Invited Manuscripts

सामाजिक शोध की नूतन प्रवृत्तियां

An Edited Book

मुख्य संपादक

अमित

(एम.ए. राजनीती शास्त्र विभाग,म.द.वि. रोहतक)

शोध-पत्र

सामाजिक शोध

की नूतन प्रवृत्तियां

IJRTS पब्लिकेशन्स हाउस

सेक्टर ९२, गुडगाँव-१२२००१

सामाजिक शोध की नूतन प्रवृत्तियां

© २०२०, IJRTS पब्लिकेशन्स हाउस

प्रकाशक की सर्वानुमत्ति के बिना किसी भी प्रकार से इस पुस्तक का सम्पूर्ण या आंशिक प्रकाशन नहीं किया जा सकता है ।

ISBN: 978-81-945931-5-7

मूल्य: ₹ ४९

प्रकाशक: डॉ. विपिन मित्तल

प्रकाशन वर्ष: अगस्त, २०२०

IJRTS पब्लिकेशनस हाउस

क्रिसेंट पार्ससी, सेक्टर ९२, गुडगाँव- १२२००१

अक्षर मुद्रांकन: अहलावत प्रिंटर्स

बाउंड इन इंडिया: मित्तल काम्प्लेक्स, हुडा मार्किट, जींद, हरियाणा

सामाजिक शोध की नूतन प्रवृत्तियां

ISBN: 978-81-945931-5-7

मुख्य संपादक : अमित
(amitsuhag8888@gmail.com)

शोध-पत्र

1. हरियाणा विधानसभा चुनाव 2019 का जनादेश– एक विश्लेषण **01-03**
Author(s) By :- डॉ. अशोक खासा

2. घुमन्तू जनजाति के लोगों की शैक्षिक स्थिति का अध्ययन **04-10**
Author(s) By :- डॉ. अमित कुमार, रेखा बाई

3. भारत में 'एक देश – एक चुनाव' का मुद्दा **11-14**
Author(s) By :- डॉ. ब्रह्म प्रकाश

4. पानीपत की तीन लड़ाईयां – एक ऐतिहासिक विश्लेषण **15-18**
Author(s) By :- डॉ. रविन्दर कुमार

5. भारत में क्षेत्रीय राजनीतिक दलों की भूमिका **19-26**
Author(s) By :- अमित

6. 16वीं एवं 17वीं लोकसभा चुनाव का जनादेश : भारतीय जनता पार्टी का बढ़ता जनाधार **27-32**
Author(s) By :- महेश कुमार

7. समकालीन विश्व में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का औचित्य **33-36**
Author(s) By :- जोगिन्द्र सिंह

8. समुदायवाद और इच्छास्वतंत्रतावाद का तुलनात्मक अध्ययन **37-44**
Author(s) By :- भरत मौर्य

9. 21वीं सदी में भारत–अफगान संबंधों में चुनौतियां **45-48**
Author(s) By :- मनु कुमार

10. नागरिकता संशोधन अधिनियम : एक अवलोकन **49-52**
Author(s) By :- नवीन कुमार

11. राष्ट्रीय जागरण में स्वामी दयानन्द की भूमिका **53-58**
Author(s) By :- डॉ.जगबीर सिंह

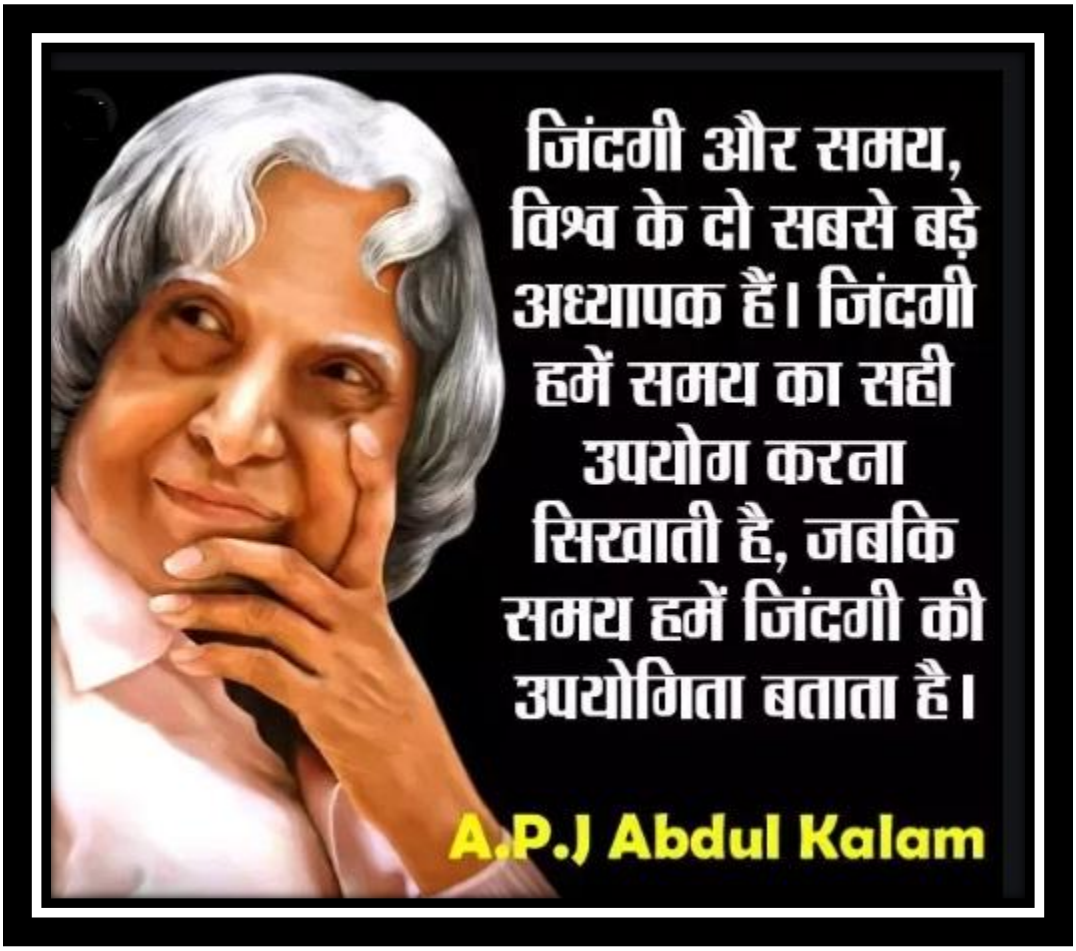
जिंदगी और समय,
विश्व के दो सबसे बड़े
अध्यापक हैं। जिंदगी
हमें समय का सही
उपयोग करना
सिखाती है, जबकि
समय हमें जिंदगी की
उपयोगिता बताता है।
A.P.J Abdul Kalam

हरियाणा विधानसभा चुनाव 2019 का जनादेश– एक विश्लेषण

डॉ.अशोक खासा

असिस्टेंट प्रोफेसर, लोक प्रशासन विभाग

अखिल भारतीय जाट हीरोज' मेमोरियल कॉलेज

हरियाणा, भारत

शोध आलेख सार

वस्तुतः मई महीने में जिस हरियाणा प्रदेश ने 10 लोकसभा सीटें भारतीय जनता पार्टी को सौंपी थी और 79 हलकों में यह पार्टी लीड रोल में थी, वहीं 21 अक्तूबर 2019 को हुए हरियाणा विधानसभा चुनाव में 40 के आंकड़े पर सिमट गई। सभी राजनैतिक दलों द्वारा जो कयास लगाए गए थे, हरियाणा का मतदान व्यवहार इस चुनाव में सर्वथा विपरीत रहा। मतदान व्यवहार के बदले स्वरूप के कारण त्रिशंकु विधानसभा की स्थिति उत्पन्न हुई। 24 अक्तूबर 2019 को आए चुनावी परिणाम भारतीय जनता पार्टी के लिए अधिक सुखदाई नहीं रहे। परन्तु इस जनादेश ने कांग्रेस को 31 सीटें जीताकर एक संजीवनी देने का कार्य किया। प्रस्तुत शोध पत्र में हरियाणा विधानसभा चुनाव 2019 के जनादेश का विश्लेषण किया गया है।

मूलशब्द– विधानसभा चुनाव, विखण्डित जनादेश, त्रिशंकु विधानसभा, स्थानीय मुद्दे।

शोध–पत्र

भूमिका– हरियाणा प्रदेश भारत की राजनीति में एक महत्वपूर्ण क्षेत्र माना जाता है। इस प्रदेश की प्राचीन राजनैतिक संस्कृति व विरासत समाज के बुद्धिजीवी वर्ग को हमेशा ही अपनी तरफ आकर्षित करती रही है। 1 नवम्बर 1966 को पंजाब से अलग होकर यह राज्य बना और स्वतंत्र हरियाणा प्रदेश में 1967 में पहले विधानसभा के आम चुनाव हुए। तब से लेकर अब तक लालों की राजनीति का अखाड़ा यह प्रदेश रहा है। यहां जातिवाद व परिवारवाद की राजनीति ने हमेशा ही मतदान व्यवहार को प्रभावित किया है। परन्तु 2014 के विधानसभा चुनाव में तथा मई 2019 के लोकसभा चुनाव में स्थिति बिल्कुल उलट रही। इसके बावजूद 21 अक्तूबर 2019 को हुए विधानसभा चुनाव के परिणाम चौंकाने वाले रहे। एक वर्ष से भी कम समय में वजूद रखने वाली जे.जे.पी. 10 सीटें जीतकर किंगमेकर के रूप में उभरी तथा उसने भारतीय जनता पार्टी को समर्थन देकर गठबंधन सरकार का निर्माण किया। इस बार दोबारा से मनोहर लाल खट्टर प्रदेश के मुख्यमंत्री बने तथा दुष्यंत चौटाला उपमुख्यमंत्री पद पर काबिज हुए।

मतदान व्यवहार तथा हरियाणा विधानसभा चुनाव 2019– चूंकि चुनाव पूर्वी सर्वेक्षणों में भारतीय जनता पार्टी को बड़े जनादेश वाली पार्टी के रूप में दर्शाया गया था और स्वयं भारतीय जनता पार्टी के कार्यकर्त्ताओं द्वारा भी 75 पार का नारा दिया गया था। इसमें मीडिया की अहम् भूमिका रही। सोशल मीडिया ने हरियाणा के मतदाताओं को गुमराह करने का कार्य किया। चुनावी परिणाम दर्शाते हैं कि कई स्थानों पर तो कांग्रेस बहुत कम अंतर से हारी। इस बात का अंदेशा स्वयं कांग्रेस को भी नहीं था कि वह इतनी सीटें जीत सकती है। इस चुनाव में जातिवाद, परिवारवाद, का प्रभाव एक सीमित रूप में देखने को मिला। बंसीलाल परिवार से किरण चौधरी ने चुनाव जीता। देवीलाल परिवार से भी अभय चौटाला, देवीलाल परिवार की विरासत संभालने वाले दुष्यंत चौटाला तथा नैना चौटाला भी चुनाव जीती। कांग्रेस के राष्ट्रीय प्रवक्ता रणदीप सुरजेवाला भी चुनाव हार गए। इस समय राष्ट्रीय मुद्दों की बजाय स्थानीय मुद्दे अधिक प्रभावी रहे। पिछली सरकार के कई कद्दावर मंत्री तक हार गए। मोदी और शाह द्वारा की गई रिकार्ड रैलियों का भी मतदाताओं पर भी अधिक प्रभाव नहीं पड़ सका। जी.टी. बेल्ट में भारतीय जनता पार्टी की 22 में से 14 सीटें बची। जे.जे.पी. ने दक्षिणी हरियाणा को छोड़कर तीनों क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई।

हरियाणा विधानसभा चुनाव 2019 में दलीय स्थिति– यदि विभिन्न दलों की राजनैतिक सफलता का आंकलन किया जाए तो इस तालिका के माध्यम से यह बात समझी जा सकती है कि कौन सी पार्टी ने कितनी सीटें जीती?

क्र.सं	पार्टी	2014	2019	वोट प्रतिशत		अंतर
				2014	2019	
1	भारतीय जनता पार्टी	47	40	33.20	36.50	+3.3
2	कांग्रेस	15	31	20.58	28.10	+7.52
3	इनेलो	20	1	24.73	2.5	-22.23
4	जजपा	--	10	--	14.9	+14.9
5	अन्य	5	8	10.60	18	+7.4

स्रोत– दैनिक भास्कर, रोहतक (25 अक्तूबर 2019)

यदि हरियाणा विधानसभा चुनाव की दलीय स्थिति का अध्ययन किया जाए तो यह बात स्पष्ट होती है कि पार्टी की 7 सीटें तो घट गई परन्तु वोट प्रतिशत बढ़ गया। इसके विपरीत कांग्रेस की सीटें व वोट प्रतिशत दोनों बढ़े। प्रथम बार चुनाव लड़ने वाली जजपा ने लगभग 15 प्रतिशत वोटों के साथ 10 सीटें जीती। इस चुनाव में सबसे ज्यादा नुकसान इनेलो का हुआ। इस पार्टी को केवल 1 सीट ही मिली और वोट प्रतिशत भी 2.5 पर ही सिमट गया।

चुनावी जनादेश–इस चुनाव में स्थानीय मुद्दे अधिक महत्वपूर्ण रहे। जी.टी.बेल्ट में 2014 में भारतीय जनता पार्टी ने 22 सीटें जीती थी। इस बार वह 14 के आंकड़े पर सिमट गई। इसी तरह 2014 में एक सीट जीतने वाली कांग्रेस 9 पर पहुंच गई। जाट लैंड का किला कांग्रेस के लिए सुरक्षित रहा। भारतीय जनता पार्टी ने 2014 में यहां 8 सीटें जीती थी जो घटकर 7 रह गई। इसी तरह 11 सीटें जीतने वाली कांग्रेस का आंकड़ा 12 पर पहुंच गया। दक्षिणी हरियाणा में इनेलो शून्य पर आऊट हो गई। 2014 में 14 सीटें जीतने वाली भारतीय जनता पार्टी का आंकड़ा 15 पर पहुंच गया। 2014 में चार सीटों वाली कांग्रेस का आंकड़ा इस क्षेत्र में 6 पर पहुंच गया। पश्चिमी हरियाणा में 2014 में तीन सीटें जीतने वाली भारतीय जनता पार्टी इस बार 4 सीटें जीत गई। 2014 में शून्य पर आऊट होने वाली कांग्रेस ने भी इस क्षेत्र में 3 सीटों पर कब्जा जमा लिया। पिहोवा, कलायत, कैथल, गन्नौर, राई, फतेहाबाद, नलवा, लोहारू, हथीन, होडल और पलवल में पहली बार कमल खिला। जिस क्षेत्र में ज्यादा वोटिंग हुई वहां विपक्ष फायदे में रहा।

सारांश– इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 2019 के चुनावी जनादेश ने हरियाणा के मतदाताओं के कारण विखण्डित रूप लिया है। 2014 में 47 सीटें जीतने वाली भारतीय जनता पार्टी अब केवल 40 के आंकड़े पर सिमट गई है। इसलिए सरकार का गठन करना भारतीय जनता पार्टी के आला हाईकमान की प्राथमिकता रही है। नाटकीय घटनाक्रम के चलते अंत में मनोहर लाल खट्टर को दिल्ली बुलाया गया और फिर से विधायक दल का नेता चुना गया। पार्टी निर्माण में निर्दलियों व जेजेपी विधायकों को शामिल किया गया ताकि एक मजबूत गठबन्धन सरकार का निर्माण किया जा सके। पहले तो दागी विधायक गोपाल कांड़ा को सरकार में शामिल होने का आमंत्रण दिया गया, बाद में उसकी छवि को देखते हुए पार्टी ने किनारा करना ही उचित समझा। आज हरियाणा में मनोहर लाल खट्टर सरकार की दूसरी पारी चल रही है। सरकार किन वायदों पर खरा उतरती है, यह तो आने वाला समय ही बतायेगा। इसमें जेजेपी की विशेष भूमिका रहेगी।

सन्दर्भ सूची–

1. एम.एल.आहूजा, हैण्डबुक ऑफ जनरल इलेक्शन्स एण्ड इलैक्ट्राल रिफोर्मस, मित्तल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2000.
2. विपिनचन्द्र, समकालीन भारत, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2011.
3. रजनी कोठारी, भारत में राजनीति, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली, 2013.
4. ब्रह्मप्रकाश, भारत के संसदीय लोकतंत्र में दलीय प्रणाली, लेखनी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016.
5. राजदीप सरदेसाई, ''राष्ट्रवादी मुद्दों पर भारी पड़े स्थानीय मसले'', दैनिक भास्कर, रोहतक, 25 अक्तूबर 2019, पृ. 2.
6. दैनिक भास्कर, रोहतक, 25 अक्तूबर, 2019.
7. दैनिक जागरण, पानीपत, 25 अक्तूबर, 2019.

घुमन्तू जनजाति के लोगों की शैक्षिक स्थिति का अध्ययन

[1]डॉ. अमित कुमार, [2]रेखा बाई

[1]असिस्टेंट प्रोफेसर, राव बिरेंदर सिंह, शिक्षा महाविद्यालय, रेवाड़ी

[2]एम.एड. स्कॉलर, राव बिरेंदर सिंह, शिक्षा महाविद्यालय, रेवाड़ी

हरियाणा, भारत

शोध आलेख सार

घुमन्तू जनजाति वे जाति होती हैं जिनके पास रहने के लिए कोई जगह नहीं होती है जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते है ये जातियाँ अपनी आजीविका के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर आती जाती रहती है इनका कोई निश्चित स्थान नहीं होता है। घुमन्तू खानाबदोशी अथवा घुमक्कड़ जनजातियों में हम उन जनजातियों को शामिल करते है जो एक निश्चित स्थान पर आवास बनाकर स्थाई रूप से रहने की अपेक्षा भिन्न–भिन्न स्थानों पर जाकर रहती है। इस प्रकार धीरे–धीरे जीवन जीने की आदत इनकी आदत का मुख्य भाग बन गया। अनेक सरकारी प्रयास और प्रलोभन भी इसकी स्थाई बसावट को अभिप्रेरित करने में सफल नहीं हुए है। इसी आधार पर समय तथा पाठ्यक्रम को ध्यान में रखते हुए घुमन्तुओं की शैक्षिक समस्या से सम्बन्धित षोध करने को महत्त्व दिया गया है। यह पाया गया कि घुमन्तू जनजाति के लोगों के बच्चे या तो स्कूल ही नहीं जाते या कुछ समय बाद पारिवारिक तथा सांस्कृतिक समस्याओं के कारण स्कूल छोड़ देते हैं तथा प्राथमिक शिक्षा भी पूरी नहीं करते हैं।

मूलशब्द– घुमन्तू जनजाति।

शोध–पत्र

प्रस्तावनाः

घुमन्तू जनजाति वे जाति होती हैं जिनके पास रहने के लिए कोई जगह नहीं होती है जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते हैं। ये जातियाँ अपनी आजीविका के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर आती जाती रहती है इनका कोई निश्चित स्थान नहीं होता है। हमारे देश में घुमन्तू जातियों की तादाद करीब पन्द्रह करोड़ है। लेकिन अब भी ज्यादातार के पास न कोई ठौर है न ठिकाना। 1953 में 'काका कालेकर' की अध्यक्षता में एक कमीशन बैढ़या गया। जिसमें इस जाति के लोगों को अनुसूचित जाति में शामिल किये जाने की सिफारिश की गई जिससे इन्हें मुख्यधारा में जोड़ा जा सके। राष्ट्रीय स्तर पर लगभग 400 से 450 जातियाँ इस श्रेणी में शामिल है। इनकी तादाद करीब 15 करोड़ है। 23 अक्टूबर 2003 में एक आयोग का गठन किया गया ताकि इनकी समस्याओं के समाधान के लिए कदम उठाए जा सके। 14 मार्च 2005 को एक आयोग का गठन हुआ। उस आयोग ने अध्ययन कर और पूरे देश को दौरा करके 2 जुलाई 2008 को अपनी रिपोर्ट दे दी। इन लोगों को लेकर आज भी सामाजिक मानसिकता में बदलाव नहीं आ सका है।

हरियाणा के रेवाड़ी जिले में पाई जाने वाली घुमन्तू जनजातियाँः–

बंजाराः– बंजारा या 'खानाबदोश' मानवों का ऐसा समुदाय है जो एक ही स्थान पर बसकर जीवन यापन करने की बजाया एक स्थान से दूसरे स्थान पर निरन्तर भ्रमणशील रहता है। एक आकलन के अनुसार विश्व में कोई 3–4 करोड़ बंजारे है। कई बंजारा समाजों ने बड़े–बड़े साम्राज्य तक स्थापित करने मे सफलता पायी।

लौहारः– उस व्यक्ति को लौहार कहते है जो लोहा या इस्पात का उपयोग करके विभिन्न वस्तुएँ बनाता है। भारत में लौहार एक प्रमुख व्यावसायिक जाति है। हथौड़ा धनी धौकनी आदि औजारो का प्रयोग करके लौहार फाटक, ग्रिल, रेलिंग, खेती के औजार, कुछ बर्तन एवं हथियार आदि बनाता है।

सपेराः– सपेरा एक घुमन्तू जनजाति है जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते है। इनका मुख्य व्यवसाय सॉप पकड़ना है, सांपों का खेल दिखाना है। इनसे मिली आमदनी से ये अपना जीवन यापन करते है। सपेरा जनजाति को कालबेलिया के नाम से भी जाना जाता है। कालबेलिया जनजाति द्वारा प्रस्तुत किया जाने वाला राजस्थान का एक भावगम्य लोक नृत्य है। यह जनजाति खास तौर पर इसी नृप्य के लिए जानी जाती है और यह उनकी संस्कृति का एक अभिन्न अंग है।

भोपाः– भोपा राजस्थान (भारत) में एक लोक देवताओं का गायन करने वाला समुदाय है। ये मुख्यरूप से राजस्थान में ही है। भोपा शब्द पुरूषों के लिए प्रयोग किया जाता है। भोपा राजस्थान में पाबूजी की फड़ और देवनारायण की फड़ में चित्रों को देखकर गायन करते है। ये भोपे मन्दिरों में भी गायन करते है। भोपा–भोपी धार्मिक भजन गाते है। भोपा–गोगा की पूजा करते है। यह सापं को बहुत पवित्र मानते हैं।

समस्या का औचित्यः–

घुमन्तू जनजाति के लोग एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते हैं। अतः इन लोगों को शिक्षा नहीं मिल पाती है। इन लोगों का रहने के लिए कोई घर नहीं होता है। ये लोग जंगलों में, सड़कों के किनारे रहते हैं। अतः ये अपने बच्चों को स्कूलों में नहीं भेजते हैं। घुमन्तू जनजाति के लोगों के पास आजीविका के लिए कोई भी साधन नहीं है। अतः ये अपने बच्चों को छोटी उम्र में ही काम पर लगा देते हैं जिसके कारण इनके बच्चे अनपढ़ रहते हैं। घुमन्तू जनजाति के लोगों को क्या संविधान के द्वारा कोई शैक्षिक आरक्षण दिया गया है? अगर हाँ तो कितना दिया गया है? घुमन्तुओं के लिए संविधान तथा केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा शिक्षा से सम्बन्धित किस प्रकार के प्रयास तथा योजनाओं को आरम्भ किया गया है। इन सभी तथ्यों की पुष्टि के लिए इस अध्ययन का चयन किया गया है। यह भी है कि घुमन्तुओं की विभिन्न प्रकार की समस्याओं जैसे– सामाजिक, स्वास्थ्य, शैक्षिक, मानसिक इत्यादि पर बहुत कम अनुसंधान हुए हैं। इसी आधार पर समय तथा पाठ्यक्रम को ध्यान में रखते हुए घुमन्तुओं की शैक्षिक समस्या से सम्बन्धित शोध करने को महत्त्व दिया गया है।

समस्या कथनः–

''घुमन्तू जनजाति के लोगों की शैक्षिक समस्याओं का अध्ययन।''

शोध अध्ययन के उद्देश्यः–

1. घुमन्तू जनजाति के लोगों की वर्तमान शैक्षिक स्थिति के बारे में जानना।
2. घुमन्तू जनजाति के लोगों की शैक्षिक समस्याओं का अध्ययन करना।

शोध प्रश्नः–

1. घुमन्तू जनजाति के लोगों की शैक्षिक स्थिति क्या है?
2. क्या घुमन्तू जनजाति के बच्चे विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने के लिए जाते हैं?
3. क्या घुमन्तू जनजाति के लोग सरकारी शैक्षिक योजनाओं के प्रति जागरूक हैं?
4. घुमन्तू जनजाति के लोगों का शिक्षा के प्रति क्या दृष्टिकोण है?
5. क्या घुमन्तू जनजाति के बच्चों को शिक्षा में कोई छूट दी गई है?
6. क्या घुमन्तू जनजाति के बच्चे स्थायी रूप से शिक्षा ग्रहण कर पाते हैं?
7. क्या प्रौढ शिक्षा कार्यक्रम का प्रभाव घुमन्तू जनजाति के लोगों पर हुआ है?
8. क्या घुमन्तू जनजाति के बच्चे स्थायी रूप से शिक्षा ग्रहण कर पाते हैं?
9. घुमन्तू जनजाति के लोगों का लड़कियों की शिक्षा के प्रति क्या रूझान है?
10. घुमन्तू जनजाति के लोगों की शिक्षा से सम्बन्धित क्या समस्याएँ हैं?

शोध विधिः– इस अनुसंधान में सर्वे विधि का प्रयोग किया गया है जो रेवाड़ी जिले के चयनित घुमन्तू जनजाति के लोगों पर किया गया है।

न्यादर्शः– वर्तमान अध्ययन में न्यादर्श के चयन के लिए असम्भाव्य विधि के अन्तर्गत रेवाड़ी जिले के सप्रयोजन व समीप सुगमय घुमन्तू जनजाति को शामिल किया गया है। वर्तमान शोध में घुमन्तू लोगों का न्यादर्श 48 है।

उपकरणः–

वर्तमान अध्ययन में विद्यार्थी द्वारा मार्गदर्शक के सहयोग से तैयार किए गए Socio Educational Survey उपकरण का प्रयोग किया गया है। इसमें घुमन्तू लोगों की शिक्षा की वर्तमान स्थिति तथा शिक्षा से सम्बन्धित अन्य पहलूओं पर प्रश्नों का प्रयोग किया गया है।

वर्तमान अध्ययन से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषणः–

सारणी–1.1

शोध में शामिल घुमन्तू जनजाति के लोगों की कुल संख्या

क्रम संख्या	जनजाति	महिला	पुरूष	कुल संख्या
1	बंजारा	4	7	11
2	भोपा	4	12	16
3	सपेरा	3	7	10
4	लौहार	7	4	11
कुल		18	30	48

सारणी–1.2

जनजाति वाद महिला–पुरूष साक्षरता

क्रम संख्या	जनजाति	महिला		पुरूष	
		शिक्षित	अशिक्षित	शिक्षित	अशिक्षित
1	बंजारा	–	4	3	4
2	भोपा	–	4	–	12
3	सपेरा	–	3	7	–
4	लौहार	–	7	1	3
कुल			18	11	19

जन–जातिवाद महिला पुरूष साक्षरता के सर्वेक्षण में यह पाया गया कि महिला तथा पुरूषों की साक्षरता में कोई ज्यादा अन्तर नहीं है। हालांकि 30 से से सिर्फ 4 ही पुरूष साक्षर मिले जबकि 18 में से कोई भी महिला साक्षर नहीं है। अतः जनजातिवाद महिला पुरूष साक्षरता का स्थिति अच्छी नहीं पाई गई।

सारणी–1.3

महिला साक्षरता

क्रम संख्या	जनजाति	महिला	अशिक्षित	शिक्षित	5^{th}	8^{th}	10^{th}	12^{th}	B.A.
1	बंजारा	4	4	-	-	-	-	-	-
2	भोपा	4	4	-	-	-	-	-	-
3	सपेरा	3	3	-	-	-	-	-	-
4	लौहार	7	7	-	-	-	-	-	-
कुल		**18**	**18**	**-**	**-**	**-**	**-**	**-**	**-**

सर्वेक्षण में प्राप्त किए गए आंकडों के अनुसार बंजारा, सपेरा, भोपा तथा लौहार जनजातियों की कुल 18 महिलाओं में से कोई भी महिला शिक्षित नहीं मिली। यह पाया गया कि महिलाओं को प्राईमरी शिक्षा तक भी प्राप्त नहीं हुई।

सारणी–1.4

पुरूष साक्षरता

क्रम संख्या	जनजाति	पुरूष	अशिक्षित	शिक्षित	5^{th}	8^{th}	10^{th}	12^{th}	B.A.
1	बंजारा	7	4	3	3	-	-	-	-
2	भोपा	12	12	-	-	-	-	-	-
3	सपेरा	7	7	-	-	-	-	-	-
4	लौहार	4	3	1	1	-	-	-	-
कुल		**30**	**26**	**4**	**4**	**-**	**-**	**-**	**-**

सर्वेक्षण के आधार पर प्राप्त आँकड़ों के अनुसार पुरूषों की भी स्थिति शिक्षा के क्षेत्र में अच्छी नहीं मिली। लौहार, बंजारा, सपेरा तथा भोपा जनजातियों के कुल 30 पुरूषों में से केवल 4 पुरूष ही शिक्षित मिले। जिनमें 3 बंजारा जनजाति से तथा 1 लौहार जनजाति से सम्बन्ध रखता है, जबकि 30 में से 26 पुरूष अशिक्षित मिले।

सर्वेक्षण में पूछे गये प्रश्नों से प्राप्त आँकडों के आधार पर निम्न निष्कर्ष निकाले गये:–

- यह पाया कि सर्वेक्षण में शामिल जनजातियों में स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या तथा स्कूल न जाने वाले बच्चों की संख्या लगभग बराबर मिली तथा सर्वेक्षण में शामिल जनजातियों के कुल बच्चों में से अशिक्षित बच्चों की संख्या, शिक्षित बच्चों से दोगुनी मिली। इससे यह आभास होता है कि भोपा, सपेरा, लौहार तथा बंजारा जनजाति के अधिकतर बच्चे स्कूल को शिक्षा पूर्ण करने से पहले ही छोड़ देते हैं।
- यह पाया गया कि सर्वेक्षण में शामिल जनजाति के लगभग 50 प्रतिशत लोगों को सरकार द्वारा शिक्षा से सम्बन्धित दी जाने वाली सुविधाओं की जानकारी नहीं है।
- सर्वेक्षण में यह पाया गया कि लगभग सभी जनजाति के लोग मानते हैं कि बच्चों को शिक्षा का अधिकार है।
- सर्वेक्षण के अनुसार बंजारा, सपेरा, भोपा तथा लौहार जनजाति के लोगों के बच्चे एक कक्षा की पूरी पढ़ाई एक ही स्कूल में नहीं कर पाते हैं। इसका कारण यह बताया जाता है– क्योंकि वह घुमन्तू है तथा स्थान बदलते रहते हैं इसलिए उनके बच्चे किसी एक स्थान के स्कूल में पढ़ने में असमर्थ हैं।
- सर्वेक्षण से प्राप्त आँकड़ों के अनुसार बंजारा, लौहार, भोपा तथा सपेरा जनजाति के 50 प्रतिशत से ज्यादा लोग एक जगह रहना चाहते हैं ताकि वे अपने बच्चों को स्कूली शिक्षा एक ही जगह से पूरी करवा सके लेकिन वे असमंजस में भी दिखे कि वे अपनी पारम्परिक संस्कृति व घुमन्तू प्रवृत्ति को भी नहीं छोड़ना चाहते हैं।
- सर्वेक्षण में शामिल जनजातियों के लोगों को सरकार द्वारा सभी वर्गों के लिए तथा विशेष रूप से पिछड़ों के लिए निर्धारित शैक्षिक सुविधाओं की जानकारी शून्य के बराबर है।
- सर्वेक्षण से प्राप्त आँकड़ों के अनुसार बंजारा, भोपा, सपेरा तथा लौहार जनजाति के लोग लड़कियों की शिक्षा के पक्ष में भी थे। हालांकि इन जनजातियों में महिलाओं की साक्षरता शून्य के बराबर है।
- सर्वेक्षण से प्राप्त आँकडों के अनुसार बंजारा, भोपा, सपेरा तथा लौहार जनजाति के व्यस्क लोगों में पढ़ने के प्रति लगभग शून्य के बराबर रूचि दिखाई दी।
- लौहार, सपेरा, भोपा व बंजारा जनजाति के लोगों में अपने बच्चों को पढाने में आने वाली समस्याओं के लिए निम्नलिखित तर्क दिए:–
    - क्योंकि वे घुमन्तू हैं तथा एक स्थान पर नहीं रहते हैं।
    - उनके बच्चों के आधार कार्ड नहीं बनाये गये हैं।
    - क्योंकि जहाँ वह रहते हैं वहाँ से स्कूल दूर है।
    - उनके बच्चों के साथ स्कूल में जाति आधारित भेदभाव होता है।

- क्योंकि वे गरीब हैं इसलिए रोजी–रोटी के लिए उन्हें बच्चों को साथ में काम पर लगाना पड़ता है।

मुख्य निष्कर्षः–

शोध प्रश्नों के उत्तर के लिए सर्वेक्षण तथा सर्वेक्षण से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुएः–

1. सपेरा, भोपा, लौहार तथा बंजारा जनजाति के लोगों की शैक्षिक स्थिति अच्छी नहीं पाई गई। महिला तथा पुरूष दोनों **में** ही साक्षरता लगभग शून्य के बराबर मिली।
2. शोध में शामिल घुमन्तू जनजातियों के बच्चों में निरक्षर बच्चों की संख्या साक्षर बच्चों से दोगुनी मिली।
3. यह पाया गया कि घुमन्तू जनजाति के लोगों के बच्चे या तो स्कूल ही नहीं जाते या कुछ समय बाद पारिवारिक तथा सांस्कृतिक समस्याओं के कारण स्कूल छोड़ देते हैं तथा प्राथमिक शिक्षा भी पूरी नहीं करते हैं।
4. यह पाया गया कि घुमन्तू जनजाति के लोगों को सरकार के द्वारा शिक्षा से सम्बन्धित दी जाने वाली सुविधाओं की जानकारी नहीं है।
5. यह पाया गया कि घुमन्तू जनजाति के लोग लड़कों तथा लड़कियों की शिक्षा प्राप्ति के प्रति सहमत हैं लेकिन स्थान बदलते रहने के कारण बच्चों की शिक्षा पूर्ण करवाने में असमर्थ हैं।
6. यह पाया गया कि भूतकाल के प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों का घुमन्तू जनजाति के लोगों को किसी भी प्रकार का लाभ नहीं मिला।
7. यह पाया गया कि घुमन्तू जनजाति के लोगों के बच्चों को स्कूल दाखिले में कोई विशेष प्रेरणात्मक छूट नहीं दी गई है।

शिक्षा में उपयोगिताः–

इस अनुसंधान शोध को करने के बाद प्राप्त निष्कर्ष से पता चलता है कि घुमन्तू जनजाति के लोगों के बच्चे स्कूल में कम जाते हैं तथा उन्हें शैक्षिक सुविधाओं की जानकारी भी नहीं है। घुमन्तू जनजाति के लोगों के पास अपने निश्चित आवास स्थान नहीं होने के कारण इन लोगों के बच्चे एक ही स्कूल में रहकर शिक्षा पूरी नहीं कर पाते हैं।

प्रायः देखा जाता है कि घुमन्तू जनजाति के लोग अपने बच्चों को पढ़ाना तो चाहते हैं परन्तु उनकी आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण वे अपने बच्चों को काम पर लगा देते हैं। इस शोध से पता चलता है कि घुमन्तू जनजाति के लोगों के आधार कार्ड नहीं हैं तथा उन्हें वोट देने का भी अधिकार नहीं है और इनके आधार कार्ड बनाने के लिए सरकार के द्वारा कोई भी सुविधा उपलब्ध नहीं करवाई गई है। जिसके कारण इनके बच्चों का आधार कार्ड नहीं बनता तथा इन बच्चों को स्कूल में दाखिला नहीं मिल पाता है। अतः इस दिशा में राज्य स्तर पर विचार करने की जरुरत है।

Bibliography

1. Hansa, A. (1998). *Tribal Development in India:* An appraisal, Print House Limited.
2. Jadhav, H. (2016). *Nomad Culture & Heritage,* Mittal & Sons, Delhi- India.
3. Kaul, L. (2014). *Methodology of Education Research:* Shimla: Vikash Publication.

4. Mangla, S. (2000). *Teacher Education:* Trends and Strategy, New Delhi; Radha Publication.
5. Mangla, S.K. (2014). *Research Methodology in Behavioural Sciences,* New Delhi: Phi Learning Private Limited.
6. Sharma, R.A. (2017). *Advance Research in Education:* Meerut: R. Lal Publication.
7. Sharma, A. (2011). *South Asian Nomads,* Retreeved from www.creat.rpc.org
8. http://ncdnt.gov.in/index.php
9. http://en.wikipedia.org/wiki/Nomadic Tribes in India
10. http://www.drishtiias.com/hindi/gs-articles/general-studies-articles/ criminal-tribes-act-an-unfortunate-legacy
11. http://hindi.yourstory.com/read/397970ba62/gspsy-journalists-gathered-in-the-stability-and-recognition-of-the-unique-try-mittal-patel
12. http://www.livehindustan.com/news/uttarpradesh/article1-Ghumantu-Caste-567989.html
13. http://ngm.nationalgeographic.com/2010/02nomads/lancaster-text
14. http://haryanascbc.gov.in/list_of_denotified.com

भारत में 'एक देश – एक चुनाव' का मुद्दा

डॉ. ब्रह्म प्रकाश

एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग

छोटूराम किसान कॉलेज जींद

हरियाणा, भारत

शोध आलेख सार

वस्तुतः भारत का संसदीय लोकतंत्र विश्व में सबसे बड़ा होने के कारण कुछ जटिलताएं लिए हुए है। भारत की दलीय व्यवस्था में चुनाव का विशेष महत्व है। चुनाव ऐसी व्यवस्था है जो संसदीय लोकतंत्र को गति प्रदान करती है। अब तक भारत में 16 लोकसभा तथा सैंकड़ों विधानसभाओं के चुनाव हो चुके हैं। चूंकि प्रथम चुनाव से लेकर वर्ष 1967 तक देश में लोकसभा और विधानसभाओं के चुनाव एक साथ होते रहे, अतः संसदीय लोकतंत्र के मार्ग में कोई बाधा उत्पन्न नहीं हुई। परन्तु 1967 के चौथे आम चुनाव के बाद लोकसभा और विधानसभाओं के एक साथ चुनाव का संतुलन चक्र बिगड़ गया और 1989 के बाद तो बार–बार होने वाले मध्यावधि चुनाव ने आम जनमानस पर काफी वित्तीय बोझ डाल दिया। वर्ष 1999 में विधि आयोग ने भी अपनी सिफारिशों में स्पष्ट कहा कि अब वक्त आ गया है कि लोकसभा और विधानसभा के चुनाव एक साथ करवाने पर चर्चा की जाए। तत्पश्चात् भारत में 'एक देश–एक चुनाव' का मुद्दा समाचार पत्रों की सुर्खियां बन गया। इसकी व्यवहारिकता को लेकर भी शंकाओं का दौर शुरू हो गया। परन्तु इसके लाभों की दृष्टि से राजनैतिक विश्लेषकों, कई राजनैतिक दलों, व समाज के बुद्धिजीवी वर्ग ने चर्चा के लिए उचित वातावरण तैयार करने की दिशा में आम सहमति बनाने पर जोर दिया। प्रस्तुत शोध पत्र भारत के संसदीय लोकतंत्र के संदर्भ में लोकसभा तथा विधानसभाओं के चुनाव एक साथ करवाने की प्रासांगिकता व औचित्य पर प्रकाश डालता है।

मूलशब्द– संसदीय लोकतंत्र, चुनाव, लोकसभा, विधानसभा, आदर्श चुनाव संहिता।

शोध–पत्र

भूमिका– भारत में दलीय लोकतंत्र का ताना–बाना काफी जटिल है। देश में हर प्रकार के चुनाव संपन्न कराना चुनाव आयोग के साथ साथ राजनीतिक दलों के लिए भी किसी चुनौती से कम नहीं है। बार–बार चुनावी आचार संहिता लागू होने से सरकार का कामकाज भी प्रभावित होता है। इसलिए हमारे देश के समय समय पर यह मांग उठती रही है कि विधानसभाओं तथा लोकसभा के चुनाव एक साथ करावाए जाएं ताकि सरकार को निर्बाध रूप से जनहित में कार्य करने का अवसर प्राप्त हो और बार–बार होने वाले चुनावी खर्चे से भी निजात मिल सके। अतः 'एक देश–एक चुनाव' की अवधारणा का

भारत में उभरना 21वीं सदी की भारत के संसदीय लोकतंत्र के विकास में एक महत्वपूर्ण घटना मानी जाती है। वास्तव में यह कार्य संभव तो नहीं है और इसके मार्ग में कुछ चुनौतियां अवश्य है। अतः इस समस्या पर चर्चा करना अधिक प्रासंगिक जान पड़ता है। इस शोध पत्र में 'एक देश–एक चुनाव' की अवधारणा अर्थात विधानसभा तथा लोकसभा के चुनाव एक साथ कराने के मुद्दे पर मंथन किया गया है।

भारत में शायद ही चार से छः महीने का समय खाली जाता होगा जब देश में कोई चुनावी माहौल न हो। पंचायती राज संस्थाओं से लेकर संसद तक के चुनाव हर छः माह के पश्चात् देश के किसी न किसी भाग में अवश्य होते रहते हैं। गठबन्धन की राजनीति के दौर में राजनैतिक अस्थिरता के वातावरण ने समाज के बुद्धिजीवी वर्ग को सोचने पर विवश कर दिया कि लोकसभा और विधानसभाओं के चुनाव एक साथ चुनाव करवाये जाने के देश को कई लाभ हो सकते हैं। वर्ष 1999 में विधि आयोग ने भी अपनी रिपोर्ट में राजनैतिक अस्थिरता को अपना आधार बनाकर दोनों चुनावों को एक साथ करवाने की सिफारिश की थी। वर्ष 2003 में भी भूतपूर्व उप–प्रधानमंत्री श्री लालकृष्ण आडवाणी ने कहा था कि केन्द्र सरकार लोकसभा और राज्यों की विधानसभाओं के चुनाव एक साथ करवाने पर गंभीरता से विचार कर रही है। वर्ष 2014 में केन्द्र में भाजपा सरकार बनने के बाद एक संसदीय समिति ने भी इसी बात की पुष्टि की थी। नीति आयोग भी इस पर अपनी राय स्पष्ट कर चुका है। नीति आयोग ने अपनी मसौदा रिपोर्ट में राष्ट्रहित के दृष्टिगत वर्ष 2024 से लोकसभा और विधानसभाओं के लिए एक साथ चुनाव करवाने की बात कही है। परन्तु यह कार्य आसान नहीं है।

अधिकांश राजनैतिक विश्लेषकों का मानना है कि एक साथ दोनों चुनाव करवाना अवधारणा की दृष्टि से तो ठीक हो सकता है, परन्तु लोकतंत्र की मूलभावना के दृष्टिगत यह एक पेचीदा कार्य है। भारतीय मतदाता आज भी इतना परिपक्व नहीं हुआ है कि वह केन्द्र और राज्यों के चुनावों में अंतर कर सके। वर्ष 1999 से 2014 तक 16 बार ऐसा हुआ जब लोकसभा चुनाव के 6 महीने के अंदर कुछ राज्यों की विधानसभाओं में चुनाव हुए और 77 प्रतिशत मामलों में एक ही पार्टी को जीत मिली। भारत के मतदाताओं का एक बहुत बड़ा वर्ग ऐसा है जो लोकसभा और विधानसभओं के चुनाव में अंतर करने में सक्षम नहीं है। वह नेताओं के प्रभामंडल से प्रभावित होकर ही मतदान करता है। इसी तरह अनुच्छेद 356 के तहत यदि किसी राज्य में मध्यावधि चुनाव करवाने पड़े तो वैकल्पिक व्यवस्था क्या हो, यह भी गंभीर चिंता का विषय है।

इस व्यवस्था के तहत एक साथ दोनों चुनाव करवाने के लिए विधानसभाओं का कार्यकाल या तो कम करना होगा या बढाना होगा। इसके लिए संविधान के अनुच्छेद 83, 85, 172, और 174 में बदलाव करने पड़ेगें। इस वैकल्पिक व्यवस्था पर कांग्रेस, सी.पी.आई और टी.एम.सी. ने सवालिया निशान लगाते हुए कहा है कि इससे भारतीय लोकतंत्र का संतुलन चक्र बिगड़ सकता है। संविधान में संशोधन करना कोई आसान कार्य नहीं है। इसके लिए राजनैतिक दलों का सहमत होना बहुत जरूरी है। यदि विश्वास मत गिर जाने के कारण मध्यावधि चुनाव करवाने पड़े तो इस अवधारणा का औचित्य ही क्या रह जाएगा? कानून एवं कार्मिक मामलों की स्थाई समिति ने इस अवधारणा की व्यवहारिकता पर अपनी

रिपोर्ट में कहा है कि यह असंभव सा लगता है कि हर पांच साल में एक साथ चुनाव करवाए जा सकें। इसके लिए समिति ने दो चरणों में चुनाव करवाने की बात तो स्वीकार की है।

राजनैतिक विश्लेषकों का मानना है कि भारत की संसदीय व्यवस्था में यदि कोई बदलाव किया गया तो जनप्रतिनिधियों की जनता के प्रति जवाबदेही कम हो जाएगी। क्योंकि वर्तमान व्यवस्था में किसी न किसी चुनाव को लेकर नेताओं को मतदाताओं के पास हर वर्ष जाना पड़ता है। इससे मतदाताओं के प्रति जनप्रतिनिधियों की जवाबदेही मजबूत बनी रहती है। इसके विरोध में कहा जाता है कि नई व्यवस्था क्षेत्रीय दलों के लिए एक नई चुनौती पेश करेगी और क्षेत्रीय मुद्दों पर राष्ट्रीय मुद्दे हावी हो जायेगें। क्षेत्रीय दलों को वित्तीय संकट का भी सामना करना पड़ेगा, क्योंकि एक साथ चुनाव होने की स्थिति में राष्ट्रीय दलों को अपने समस्त संसाधन लगाने का अवसर मिलेगा। इस स्थिति में क्षेत्रीय दल घाटे में रहेगें और उनकी राजनैतिक क्षमता कमजोर रहेगी। वास्तव में विधानसभाओं के चुनाव में क्षेत्रीय मुद्दे अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। एक साथ चुनाव करवाने की स्थिति में राष्ट्रीय मुद्दे उभर कर आएगें जो क्षेत्रीय दलों के लिए घाटे का सौदा होगा। इसके साथ–साथ यदि चुनाव में किसी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला तो उस राज्य में चुनाव की व्यवस्था कैसी होगी, यह भी एक गंभीर चिंता का विषय है। इसके साथ–साथ इतने बड़े पैमाने पर चुनाव करवाने के लिए ई.वी.एम. की व्यवस्था करना भी चुनौती भरा कार्य है। अतः तकनीकी समस्याओं के चलते और पर्याप्त सुरक्षाबलों के अभाव में चुनाव के समय कानून व्यवस्था बनाए रखना एक कठिन कार्य होगा। इसलिए कई राजनैतिक विश्लेषक निकट भविष्य में इस कार्य को असंभव बताते हैं।

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि लोकसभा और विधानसभाओं के चुनाव एक साथ करवाना असंभव है। इसके लिए मजबूत राजनैतिक इच्छाशक्ति का होना अति आवश्यक है। 'एक देश–एक चुनाव' के मुद्दे के समर्थन में कई तर्क दिए जा सकते हैं–

- एक साथ चुनाव करवाने से चुनावी खर्चे में कमी आएगी। एक अनुमान के अनुसार इससे लगभग 4500 करोड़ रूपये की बचत होगी।
- संसाधनों की बचत होने से उस धनराशि को देश के सामाजिक–आर्थिक विकास कार्यों पर खर्च करके देश को आर्थिक विकास के मार्ग पर ले जाया जा सकता है।
- इससे प्रशासनिक दक्षता बढेगी और प्रशासनिक स्तर पर होने वाली असुविधा कम होगी तथा शासन तंत्र प्रभावशाली ढंग से कार्य कर पाएगा।
- इससे चुनाव में जनसहभागिता में वृद्धि हो सकती है।
- इससे राजनैतिक भ्रष्टाचार में कमी आएगी तथा चुनाव में कालेधन के प्रयोग पर अंकुश लगेगा।
- इस व्यवस्था में राजनैतिक दलों को बार–बार चुनावी मुद्रा में आने की जरूरत नहीं होगी और वे अपना सारा ध्यान अपने ऐजेडें पर लगा सकेगें।

- इससे आम जनजीवन प्रभावित नहीं होगा क्योंकि बार–बार होने वाले चुनाव से आम लोगों को परेशानियां झेलनी पड़ती है और बार–बार चुनाव के लिए लाईन में लगना पड़ता है।

मूल्यांकन– अतः एक साथ चुनाव करवाने से न केवल मतदाताओं का उत्साह बना रहेगा बल्कि इससे समय व धन की बचत भी होगी। नई व्यवस्था राजनैतिक दलों के चुनावी खर्च पर अंकुश लगाएगी और उनके लिए काला धन चुनाव में खपाना आसान कार्य नहीं होगा। बार–बार लगने वाली आचार संहिता से जनहित के जो कार्य प्रभावित होते हैं, वे भी नहीं होगें। इससे सरकारी मशीनरी की कार्यक्षमता बढ़ेगी और आम जनता को लाभ होगा। एक साथ चुनाव करवाने से राजनैतिक स्थिरता का दौर शुरू होगा और विकास कार्यों में तेजी आएगी। परन्तु इसके मार्ग में कई व्यवहारिक समस्याएं हैं। चूंकि भारत का लोकतंत्र विश्व का विशालतम लोकतंत्र है, अतः वर्तमान व्यवस्था में तनिक सा बदलाव भी संवैधानिक व्यवस्था को ध्वस्त कर सकता है। परन्तु लोकतंत्र में कुछ भी असंभव नही है। एक साथ चुनाव करवाने का मुद्दा बहुत महत्व का है। फिर भी भारतीय राजनीति के लिए यह चुनौतीपूर्ण कार्य है। इसके लिए सभी राजनैतिक दलों, बुद्धिजीवियों व गैर–सरकारी संगठनों को आम सहमति पर पहुंचना जरूरी है।

संदर्भ सूची–

1. पारूल चक्रवर्ती, **लोकतांत्रिक सरकार और चुनावी प्रक्रिया,** कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1994.
2. मानचन्द खण्डेला, **भारतीय राजनीति का बदलता परिदृश्य,** अविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, 1999.
3. एन.के.गोस्वामी, **भारत में संसदीय व्यवस्था,** अविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, 2005.
4. ओमप्रकाश रॉय, **भारत की चुनावी राजनीति के बदलते आयाम,** विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणासी, 2006.
5. उमेद सिंह इन्द्रा, **भारतीय लोकतंत्र : दशा एवं दिशा,** राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2007.
6. रजनी कोठारी, **भारत में राजनीति,** ओरियंट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली, 2014.
7. एस.वाई.कुरैशी, **लोकतंत्र के उत्सव की कहानी,** राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 2017.
8. रामसकल सिंह, **भारतीय शासन और राजनीति**, अर्पण पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2018.

पानीपत की तीन लड़ाईयां – एक ऐतिहासिक विश्लेषण

डॉ. रविन्दर कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग

राजकीय महाविद्यालय महेन्द्रगढ़

हरियाणा, भारत

शोध आलेख सार

वस्तुतः हरियाणा प्राचीन् काल से ही भारत की ऐतिहासिक व समृद्व परम्परा वाली भूमि रही है। आज भी हरियाणा के अलग–2 भागों में ऐतिहासिक महत्व के स्थल विधमान हैं। इस दृष्टि से पानीपत नगर हरियाणा का प्रमुख नगर है जो अपनी तीन ऐतिहासिक लड़ाईयों के लिए जाना जाता है। वास्तव में ये लड़ाईयां दिल्ली की सत्ता पर काबिज होने के लिए लड़ी गई। प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य पानीपत की तीन लड़ाईयों का ऐतिहासिक विश्लेषण करना है।

मूलशब्द– मुगल काल, पानीपत, लड़ाईयां, काला आम, सैनिक।

शोध–पत्र

भूमिकाः– भारत के महाकाव्य महाभारत में हरियाणा का उल्लेख बहुधन्यक और बहुधन के रूप में किया गया है। उस समय के कुछ स्थान आधुनिक शहरों जैसे, प्रियुदक (पेहवा), तिलप्रथ (तिल्पुट), पानप्रस्थ (पानीपत) और सोनप्रस्थ (सोनीपत) के रूप में विकसित हो चुके हैं। आज गुड़गांव का नाम गुरूग्राम हो चुका है। कुरूक्षेत्र में ही महाभारत के युद्ध का केन्द्र था और इसी धरती पर भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया था। महाभारत के बाद अंधयुग के दौर में हरियाणा के बारे में ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं, फिर भी गण परम्परा से यहां के लोगों का काफी लगाव रहा है। हर्षकाल से लेकर मुगलकाल के अन्त तक हरियाणा की सर्वोच्च पंचायत को शासन की ओर से महत्व दिया जाता रहा। मुगलकाल में जनपदों का स्थान खापों और गणों का स्थान सर्वखाप पंचायतों ने ले लिया था। अतः प्राचीन हरियाणा की प्रबल गण परम्परा की जानकारी एक हजार वर्षीय यौधेय इतिहास से प्राप्त होती है। अतं में मुगल शासकों के पतन के बाद समस्त हरियाणा ब्रिटिश आधिपत्य में हो गया।

1526ई. में मुगलशासक बाबर के आक्रमणों से हरियाणा भी अछूता नहीं रहा। पानीपत नाम स्थान पर दिल्ली के शासक इब्राहिम लोदी के साथ बाबर ने युद्ध किया। पानीपत का युद्ध जीतने के बाद बाबर का दिल्ली पर अधिकार हो गया। 1556ई. में बाबर के उत्तराधिकारी हुमांयु के बेटे अकबर ने हेमू के साथ पानीपत की दूसरी लड़ाई लड़ी और इसमें अकबर की जीत हुई। उसके बाद हरियाणा की जनता

पर मुगल बादशाह औरंगजेब ने भंयकर अत्याचार किए। परन्तु 1707ई में उसकी मृत्यु के बाद यहां से मुगलों का अधिपत्य धीरे–धीरे समाप्त हो गया। तत्पश्चात् हरियाणा के पानीपत नामक स्थान पर 1761ई को अहमदशाह अब्दाली और मराठा शक्ति के बीच तीसरी लड़ाई हुई। इसमें अहमदशाह अब्दाली ने जीत प्राप्त की। चूंकि 1600ई में भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी प्रवेश कर चुकी थी, परन्तु 1718ई में लार्ड वेलजली ने गवर्नर जनरल बनते ही अपनी विस्तारवादी योजना शुरू कर दी और हरियाणा में संघर्ष चलता रहा। अन्त में 1809–10ई में समस्त हरियाणा पर ब्रिटिश आधिपत्य स्थापित हो गया।

जब 1526ई. में बाबर का भारत में आगमन हुआ तो भारत का इतिहास ही बदल गया। इस समय दिल्ली की सत्ता पर इब्राहिम लोदी का कब्जा था। जब बाबर ने भारत पर हमला किया तो पहले यह सोचा गया कि वह भी लूटपाट करके वापिस चला जायेगा। परन्तु इस बार ऐसा नहीं हुआ। उसके इरादे अलग ही थे। उसने सबसे पहले पंजाब में दौलत खां को समाप्त किया और तत्पश्चात् पानीपत क्षेत्र में पहुंच गया। जब वह 12 अप्रैल 1526ई को पानीपत पहुंचा तो उसके पास एक विशाल सेना नहीं थी और उसमें केवल 12000 सैनिक थे। दूसरी तरफ इब्राहिम लोदी के पास लगभग 1 लाख सैनिक थे। लेकिन बाबर ने युद्ध रणनीति के तहत अपनी सेना को व्यवस्थित किया और इब्राहिम लोदी को युद्ध के लिए उकसाया। बाबर की तोपों ने इब्राहिम के हाथियों पर गोले बरसाने शुरू किये और भगदड़ मच गई। अन्ततः इस लड़ाई में बाबर की जीत हुई और भारत में मुगल साम्राज्य की नींव पड़ी।

पानीपत की प्रथम लड़ाई जीतने के बाद बाबर ने पानीपत में एक भव्य मस्जिद का निर्माण करवाने का आदेश दिया ताकि एक यादगार स्मारक के रूप में जनता उस लड़ाई को याद रखे। दूसरी तरफ बाबर अपने विरोधी इब्राहिम लोदी की वीरता से भी काफी प्रभावित हुआ और उसने इब्राहिम लोदी के मृतक शरीर को जब युद्धभूमि में रक्तरंजित देखा तो उसकी आंखें नम हो गई। तुरन्त बाबर ने मृतक बादशाह इब्राहिम लोदी का अन्तिम संस्कार सम्मानपूर्वक करने का आदेश दिया और वहीं पर एक मकबरा भी बनवाया। आज ये दोनों ही स्मारक – 'काबुली बाग मस्जिद' और 'इब्राहिम लोदी का मकबरा' पानीपत में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग, भारत सरकार द्वारा संरक्षित स्मारक हैं। तत्पश्चात् जब हुमायूं गद्दी पर बैठा तो उसके भी शासनकाल में एक मस्जिद एवं मकबरे का निर्माण करवाया गया थां उसे मीर अहमद का मकबरा एवं मस्जिद के नाम से जाना जाता है। इस पर अंकित फारसी भाषा के लेख से पुष्टि होती है कि यह हुमांयू के ही शासनकाल में निर्मित हैं।

परन्तु हुमायूं की अचानक मृत्यु हो जाने पर अकबर को मुगल साम्राज्य का उतराधिकारी बनना पड़ा। इस दौरान सूर वंश के अन्तिम शासक आदिलशाह के सेनापति हेमू ने आगरा और दिल्ली की ओर अपनी सेना बढाते हुए 7 अक्तूबर 1556ई. को दिल्ली के समीप तुगलकाबाद में डेरा डाल दिया और बाद में मुगल सेना को हराकर दिल्ली की सत्ता पर अधिकार कर लिया। जब अकबर के सेनापति बैरम खां को यह सूचना मिली तो उसने सेना लेकर पानीपत में डेरा डाल दिया। यह वही मैदान था जहां 30 वर्ष पहले पानीपत की प्रथम लड़ाई बाबर ने जीती थी। इस बार 5 नवम्बर 1556ई. को जब मुगलों तथा हेमू के बीच लड़ाई हुई तो एक तीर ने युद्ध का पासा ही पलट दिया। मुगल सेना की तोपों

ने भी खूब तबाही मचाई। हेमू के वीरगति को प्राप्त होते ही भारत पर फिर से मुगलों का शासन स्थापित हो गया। आज हरियाणा सरकार ने उस क्षेत्र में एक वीर योद्धा हेमू की एक मूर्ति लगाकर उसे हेमू चौक का नाम दिया गया है, जहां उसको वीरगति प्राप्त हुई थी।

पानीपत के दूसरे युद्ध के बाद पानीपत में जनजीवन सामान्य रहा और कई वास्तुकला के निर्माण सम्बन्धी कार्य भी हुए। इस समय मुगल सम्राट जहांगीर के शासनकाल 1605–1628ई. में जी.टी. रोड़ (ग्रेंड ट्रंक रोड) के किनारों पर कोस मीनारें बनवाई गई, जिनमें से तीन आज भी पानीपत की परिधि में मौजूद हैं। मुगल सम्राट शाहजहां ने 1628–1658ई. के अपने शासनकाल में पानीपत से लगभग 15 किलोमीटर दूर घरौंडा में शाही दूतों और राहगीरों के लिए फिरोज खां द्वारा 1632ई. में एक सराय का निर्माण करवाया गया, जिसके अवशेष आज भी मौजूद हैं। जब 1707ई में औरंगजेब ने सत्ताधिकार के लिए अपने भाईयों और पिता शाहजहां के साथ अन्याय किया तो मुगल साम्राज्य का पतन शुरू हो गया। कमजोर नेतृत्व के कारण रजवाड़ों ने स्वतन्त्र प्रभसत्ता के लिए प्रयास कर दिए और सम्पूर्ण भारतवर्ष में एक अशांति व राजनीतिक अस्थिरता का दौर पड़ा। पानीपत का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं रहा और उसका भाग्य कमजोर केन्द्रीय सत्ता के कारण दुर्भाग्य में बदल गया।

इस कमजोरी का फायदा उठाकर नादिरशाह ने 8 जनवरी 1739ई. को सरहिन्द के रास्ते भारत में प्रवेश करके करनाल और तरावड़ी पर आक्रमण करके लूटपाट मचाई और तत्पश्चात् पानीपत के रास्ते जाकर दिल्ली पर 13 जनवरी 1739 ई. को अधिकार जमा लिया। जब वह वापिस अपने देश गया तो उसी समय स्थिति को समझते हुए 1757ई. में अहमदशाह अब्दाली ने भारत के उत्तर–पश्चिम भाग पर अधिकार कर लिया और दिल्ली को अपने अधीन कर लिया। परन्तु देशभक्त मराठा शक्ति ने उसकी सत्ता को उखाड़कर उत्तर भारत में सुरक्षा प्रबन्ध करने के बाद मराठे वापिस दक्षिण चले गए। मराठों के प्रभुत्व को खत्म करने के लिए मुगल बादशाह शाहजहां द्वितीय ने फिर से अहमदशाह अब्दाली को आमंत्रित किया। इस बार फिर से अहमदशाह ने दिल्ली और आस–पास के क्षेत्रों में भयंकर तबाही मचाई। फिर से मराठा शक्ति ने अहमदशाह अब्दाली को दिल्ली से खदेड़ दिया, परन्तु इस बार वह वापिस नहीं गया और उसने पानीपत के दक्षिण में अपनी छावनी बनाकर मराठों का दिल्ली से जाने की प्रतीक्षा शुरू की। दूसरी तरफ मराठा शक्ति को इसका आभास तक नहीं हुआ। बाद में जब सदाशिव भाऊ को इसके बारे में सूचना प्राप्त हुई तो उसने भी अक्तूबर 1760ई के अन्त तक पानीपत में डेरा डाल दिया।

मराठों ने अहमदशाह अब्दाली की सेना को हराने के लिए अपनी सैनिक ताकत में वृद्धि की। इस बार नई युद्ध नीति से शत्रु को हराने की रणनीति अपनाई गई। इस योजना के अनुसार शत्रु पर तब तक प्रहार नहीं करने के आदेश थे जब तक कि रसद न मिलने पर भूख से वे निढाल न हो जायें। ऐसे समय तक मराठा सेना को सुरक्षात्मक ढंग से अपने मोर्चे पर डटे रहना था। मराठा कैंप काफी लंबा व चौडा था। पूर्व से पश्चिम तक उसका फैलाव 9.5 किलोमीटर तथा उत्तर से दक्षिण 3 किलोमीटर था। एक काफी चौड़ी और गहरी खाई 22.5 मी और 5.5 मी इसके चारों तरफ खोद दी गई

थी। इसके साथ ही अन्दर की तरफ एक मिट्टी की एक दीवार खड़ी करके तोपें रखी गई थी। दूसरी तरफ अब्दाली ने भी अपनी सुरक्षा को काफी मजबूत कर लिया था। मराठा सेनापति भाऊ शूरवीर तो था, पर वह युद्ध की बारीकियों को वह नहीं जानता था। अहमदशाह अब्दाली ने मराठों के कैंप की तीन तरफ से सेना भेजकर रसद आपूर्ति बन्द कर दी। अब मराठे चारों तरफ से कटकर पानीपत की डिबिया में बन्द हो गए। इससे मराठा सेना की भूख से बुरी हालत हो गई और 14 जनवरी 1761ई. तक मराठा सेना का मनोबल भी गिर गया। जब 14 जनवरी 1761ई. को पानीपत की तीसरी लड़ाई शुरू हुई तो इसमें मराठा सेनानायक सदाशिव राव भाऊ वीरगति को प्राप्त हुए। पानीपत की इस लड़ाई ने सिद्ध कर दिया कि अब मराठे सम्पूर्ण भारत पर शासन नहीं कर सकते। इस युद्ध मे जन–धन की अपार हानि हुई। पानीपत में मराठा शक्ति की हार से अंग्रेजों का मनोबल भी बढ गया। कहा जाता है कि प्लासी की लड़ाई ने भारत में ब्रिटिश शासन का बीजारोपण किया तो पानीपत के तीसरे युद्ध ने उसे जड़ जमाने और पकने का अवसर दिया। जब अहमदशाह अब्दाली दिल्ली से वापिस गया तो पानीपत के नीचे के समस्त हरियाणा पर दिल्ली में मुगल सेना के प्रधान सेनापति तथा वजीर नजीब का अधिकार हो गया।

सारांशः– परन्तु अहमदशाह अब्दाली के वापिस जाते ही पंजाब में सिख शक्ति का उदय हो गया। सिखों ने सरहिन्द से लेकर पानीपत तक का समस्त क्षेत्र अपने अधिकार में ले लिया। नवम्बर 1765ई. में सिखों ने पानीपत के आस–पास के क्षेत्र पर प्रबल आक्रमण करके खूब लूटपाट की। मार्च 1768ई. में सिखों ने दुबारा पानीपत व सोनीपत के क्षेत्रों में प्रवेश किया। इसी तरह पानीपत की तीसरी लड़ाई के बाद हरियाणा के दक्षिण में जाट शक्ति का भी उदय हुआ तथा राजा सूरजमल जाटों का प्रमुख नेता बनकर उभरा।

सदंर्भ सूचीः–

1. हरिराम गुप्ता, **मराठाज एण्ड पानीपत**, पंजाब यूनिवर्सिटी, चण्डीगढ, 1961.
2. गुलशन राय, **फॉरमेशन ऑफ हरियाणा**, बी.आर. पब्लिशिंग कॉर्पोरेशन, दिल्ली, 1987.
3. एजाज अहमद, **हरियाणा का इतिहास–प्राचीन काल से आधुनिक काल तक**, कल्पना प्रकाशन, दिल्ली 2006.
4. के.सी.यादव, **हरियाणा का इतिहासः आदिकाल से 1966 तक,** होप इंडिया, गुड़गांव, 2012.
5. एजाज अहमद, **हरियाणा का इतिहास**, कल्पना प्रकाशन, दिल्ली, 2016.
6. चन्द्रशेखर भारद्वाज, **हरियाणाः इतिहास, समाज, कला एवं संस्कृति**, विश्वभारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2017.

भारत में क्षेत्रीय राजनीतिक दलों की भूमिका

अमित

ओपन रिसर्चर

राजनीति विज्ञान विभाग

हरियाणा, भारत

शोध आलेख सार

भारत एक प्रजातान्त्रिक देश है, प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में जनता द्वारा जनता के कल्याण के लिए एवं जनता द्वारा शासन किया जाता है। प्रजातान्त्रिक शासन प्रणाली में सभी नागरिकों को यह अधिकार होता है कि उनकी आवाज को सुना जाए चाहे वे किसी भी धर्म, जाति, लिंग या क्षेत्र के हो। भारत में संघीय शासन प्रणाली अपनाई गई है। संघीय शासन प्रणाली में नीतियाँ एवं कार्यक्रम राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखकरबनाए जाते हैं, जिसके कारण क्षेत्रीय समस्याएं या तो उपेक्षित हो जाती हैं या उन पर कम ध्यान दिया जाता है। ऐसी परिस्थिति में उन क्षेत्रीय समस्याओं या मुद्दों को आवाज देने और उन पर राष्ट्र का ध्यान आकर्षित करने के लिए क्षेत्रीय दलों का उदय होता हैं। प्रजातान्त्रिक शासन प्रणाली में क्षेत्रीय दलों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है क्योंकि ये न केवल क्षेत्रीय समस्याएँ या मुद्दे जो उपेक्षित हैं कि तरफ देश का ध्यान आकर्षित करती है बल्कि उसके निवारण के लिए प्रयास भी करती हैं। भारत में बहुदलीय पार्टी व्यवस्था है जिसमें छोटे क्षेत्रीय दल अधिक प्रबल हैं। राष्ट्रीय पार्टियाँ वे हैं जो चार या अधिक राज्यों में मान्यता प्राप्त हैं, उन्हें यह अधिकार भारत के चुनाव आयोग द्वारा दिया जाता है, जो विभिन्न राज्यों में समय–समय पर चुनाव परिणामों की समीक्षा करता है। इस मान्यता की सहायता से राजनीतिक दल कुछ पहचानों पर अपनी स्थिति की अगली समीक्षा तक विशिष्ट स्वामित्व का दावा कर सकते हैं। भारत के संविधान के अनुसार भारत में संघीय व्यवस्था है जिसमें नयी दिल्ली में केन्द सरकार तथा विभिन्न राज्यों व केन्द्र शासित राज्यों के लिए राज्य सरकार हैं। इसीलिए भारत में राष्ट्रीय व राज्य (क्षेत्रीय), राजनीतिक दलों का वर्गीकरण उनके क्षेत्र में उनके प्रभाव के अनुसार किया जाता है।

मूलशब्द– भारतीय राजनीति, राजनीतिक दल, क्षेत्रीय दल, संघीय व्यवस्था।

शोध–पत्र

भूमिका– भारत में समय–समय पर अलग–अलग क्षेत्रीय पार्टियों का गठन होता रहा है और ये देश के संसदीय लोकतंत्र में अपनी भूमिका निभाती रही है। शिरोमणि अकाली दल और जम्मू एण्ड कश्मीर नेशनल कांफ्रेंस जैसी कुछ पार्टियाँ तो 1947 में देश के आजाद होने से भी पहले गठित हो गई थी। लेकिन ज्यादातर दूसरी क्षेत्रीय पार्टियाँ देश के आजाद होने के बाद ही गठित हुई है।

क्षेत्रीय दलों की श्रेणी में रखी जाने वाली पार्टियों का विकास खासतौर पर 1967 के बाद तेज हुआ, जब देश के स्वतंत्रता संग्राम में खास भूमिका निभाने वाली इंडियन नेशनल कांग्रेस पार्टी की देश के मतदाताओं पर पकड़ ढीली होने लगी।

इस समय लगभग चार दर्जन राज्य स्तरीय पार्टियों को चुनाव आयोग की मान्यता हासिल है और लगभग दो दर्जन ऐसी हैं जिन्हें अब तक मान्यता नहीं मिली है। इनमें से कोई अपने राज्य में सत्ता में हैं तो कुछ अपनी बारी का इंतजार कर रही है। क्षेत्रीय पार्टियों ने लोकप्रियता हासिल कर राष्ट्रीय पार्टियों के सामने चुनौती पेश कर दी है। इन्होने राष्ट्रीय पार्टियों की ओर से क्षेत्र या राज्य विशेष की राजनीतिक और आर्थिक उपेक्षा को अपना आधार बनाया और आगे बढ़ी।

सबसे पुरानी क्षेत्रीय पार्टियाँ में शामिल शिरोमणि अकाली दल की स्थापना 1920 में धार्मिक संगठन शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक समिति (एसजीपीसी) ने की ताकि ब्रिटिश हुकूमत के दौरान अविभाजित पंजाब में सिखों की मुख्य प्रतिनिधि बन सके।

इस समय क्षेत्रीय पार्टियाँ आंध्र प्रदेश, असम, बिहार, दिल्ली, जम्मू–कश्मीर, नागालैंड, ओडिशा, पंजाब, सिक्किम, तमिलनाडु, तेलंगाना, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल में अपने अकेले दल पर या राष्ट्रीय पार्टी के साथ मिलकर शासन कर रही हैं।

इन सभी क्षेत्रीय पार्टियों की एक खासियत यह है कि ये सभी एक ऐसे नेता के इशारे पर चलती है जिसकी सत्ता को पार्टी के अंदर कोई चुनौती नहीं दे सकता। संक्षेप में कहें तो इन्हें कोई एक नेता और उसके विश्वासपात्र चला रहे हैं। उनके परिवार के सदस्य और रिश्तेदारों का भी पार्टी के काम–काज में खासा दखल रहता हैं।

जो पार्टियाँ किसी वैचारिक आधार पर गठित हुई हैं, उन्हें भी समय के साथ व्यक्तिगत जागीर और व्यक्तिगत हितों की रक्षा का साधन बना दिया गया है। इसलिए सामान्य तौर पर ऐसी पार्टियों का अस्तित्व भी उनका संचालन करने वाले नेता के जीवनकाल से काफी नजदीक से जुड़ा है।

क्षेत्रीय संगठनों की एक और खास बात यह है कि परिवार के सदस्य, नजदीकी रिश्तेदार और मित्र पार्टी के काम का संचालन करते हैं और उनमें से ही एक उसके नेता की विरासत को उसके जीवनकाल के दौरान या उसके बाद संभाल लेता है।

हाल के दिनों में समाजवादी पार्टी (सपा) के सबसे ताकतवर नेता और उनके बेटे के बीच लंबे समय से चल रहे संघर्ष के खुलकर सामने आ जाने की वजह से यह पार्टी चर्चा में हैं। इसलिए क्षेत्रीय दलों की विडंबना और इनके भविष्य को समझने के लिए सपा को नजदीक से समझना दिलचस्प होगा। देश के सबसे बड़े राज्य उत्तर प्रदेश पर सपा का 2012 से शासन है और 1992 में इसके गठन के बाद से यह लगभग एक दशक तक सत्ता में रही हैं। इसने केंद्र में भी सत्ता में साझेदारी की है। पार्टी का गठन उत्तर प्रदेश के तीन बार के मुख्यमंत्री और केंद्र सरकार में रक्षा मंत्री रह चुके मुलायम सिंह यादव ने जनता दल से अलग होकर किया था। 1990 के दशक की शुरूआत में मंडल आयोग की रिपोर्ट लागू होने के बाद मुलायम का प्रभाव काफी बढ़ा। इससे पहचान की राजनीति को भी खास कर उत्तर

भारत में काफी बढ़ावा मिला था। मुलायम 19989 में उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री बने और इस पद पर पूरे एक साल और 201 दिन तक रहें 1991 के आम चुनाव में जनता दल की हार के बाद उन्हें यह कुर्सी छोड़नी पड़ी। उसके बाद उन्होंने सपा की स्थापना की और दो बार मुख्यमंत्री बने।

इस साल 22 नवंबर को वे 78 वर्ष के हो जाएंगे और कहा जा रहा है कि अब वे उतने स्वस्थ नहीं रहते पार्टी के अंदर पिछले कुछ समय से वर्चस्व की लड़ाई कभी खुल कर, तो कभी दबे–छुपे चल ही रही है। लेकिन जितना खुल कर यह अब सामने आई है, इतनी कभी नहीं आई थी। उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री अखिलेश यादव और उनके चाचा शिवपाल यादव के गुट मुलायम सिंह के बाद के युग के लिए खुद को तैयार कर रहे है। अखिलेश जहाँ मुलायम के सबसे बड़े बेटे हैं, वहीं शिवपाल उनके छोटे भाई हैं। पार्टी में खुद अपनी सत्ता को चुनौती मिलती देख कर और पार्टी के भविष्य को ध्यान में रखते हुए मुलायम सिंह ने दखल दिया और एक ऐसा रास्ता दिया जो उनकी नजर में राजनीतिक रूप से उनको प्रासंगिक भी बनाए रखता और अगले चुनाव में सत्ता बनाए रखने की पार्टी की उम्मीद को भी जिंदा रखता। मुलायम की ओर से पेश किए गए एकजुटता के प्रदर्शन को अखिलेश और सपा के नव नियुक्त प्रदेश अध्यक्ष शिवपाल ने जारी रखने से इंकार कर दिया है और इसमें कोई संदेह नहीं है कि 25 साल पुरानी पार्टी के सामने इसके अस्तित्व को लेकर गंभीर संकट आ खड़ा हुआ है। इसमें बहुत सी दरारें आ गई हैं, जिनको मुलायम ढंक रहे है।

यह समझते हुए कि उनके बेटे के कदम अगले चुनाव में पार्टी की जीत की संभावना को काफी नुकसान पहुंचा सकते हैं, मुलायम ने दखल दिया और शिवपाल का गुस्सा ठंडा करने के लिए अखिलेश को प्रदेश अध्यक्ष पद से हटा कर उन्हें इस पर बिठा दिया। मुख्यमंत्री के लिए स्पष्ट संकेत होना चाहिए था। लेकिन अखिलेश माने नहीं और उन्होंने भी शिवपाल और अपने पिता के पसंदीदा मंत्रियों को बाहर का रास्ता दिखा दिया।

शिवपाल को न सिर्फ राज्य में पार्टी का प्रमुख बना दिया गया, बल्कि मुलायम ने यह भी सुनिश्चित किया कि अखिलेश की ओर से उठाए गए सभी कदम वापस ले लिए जाए। सपा के शीर्ष पुरुष एक कदम और आगे बढ़े और उन्होंने मुख्यमंत्री को झटका देते हुए अमर सिंह को पार्टी का महासचिव बना दिया, जिसे मुख्यमंत्री ने 'बाहरी' व्यक्ति बनाया था।

पार्टी से 2010 में निष्कासित कर दिए गए अमर सिंह को इस वर्ष में दुबारा पार्टी में शामिल किया गया था और पार्टी की ओर से राज्य सभा भी भेज दिया गया।

यहाँ यह बताना जरूरी है कि भले ही मुख्य संघर्ष अखिलेश और शिवपाल के बीच चल रहा हो, लेकिन पार्टी में और भी कई ताकतवर गुट हैं जो फिलहाल इनमें से किसी एक पक्ष के साथ खड़े हैं, मगर आने वाले समय में यह देख कर पाला बदल सकते हैं कि किसका पलड़ा भारी पड़ रहा है।

फिर बारी आती है हाल में पार्टी के महासचिव नियुक्त किए गए अमर सिंह की। इसी तरह राज्य सभा में पार्टी के नेता रामगोपाल यादव हैं, जो पार्टी सुप्रीमो के चचेरे भाई होने के साथ ही पार्टी के ऐसे विचारक भी हैं, जिनके बारे में कहा जाता है कि हर अहम मुद्दे पर मुलायम उनसे जरूर संपर्क

करते हैं। दूसरी तरफ मुलायम की दूसरी पत्नी साधना गुप्ता और उनके महत्वाकांक्षी बेटे प्रतीक यादव हैं, जो बड़े स्तर पर जमीन–जायदाद का कारोबार करते हैं। यादव परिवार की आतंरिक लड़ाई में इन सभी के हित दांव पर लगे हैं।

जिम्मेवारी संभालने के तुरंत बाद शिवपाल ने तत्परता दिखाते हुए अखिलेश से करीबी रखने वाले सात युवा नेताओं को निकाल दिया। इससे पहले उन्होंने एक विधान पार्षद के खिलाफ कार्यवाही शुरू कर दी थी जो मुलायम के चचेरे भाई रामगोपाल यादव के नजदीकी रिश्तेदार हैं। बड़ा सवाल यह है कि जो समझौता लादा गया है, वह लंबे समय तक चलेगा या फिर कुछ हफ्तों या महीनों में ही बिखर जाएगा। समझौता लंबा खिंचने की संभावना बहुत कम है, क्योंकि सपा के अंदर कई लड़ाइयां चल रही है।

हालांकि सपा में लड़ाइयां कई महीनों से चल रही हैं, लेकिन अगले साल की शुरूआत में होने वाले विधानसभा चुनाव की वजह से यह लड़ाई खुल कर सामने आ गई हैं। हो सकता है कि चुनाव फरवरी में ही हो जाएं और इस चुनाव ने ही दोनों खेमों में बेचैनी ला दी है, क्योंकि चुनाव से पहले 403 टिकट दाँव पर हैं। दोनों गुटों को पता है कि मजबूत वही होगा जिसके साथ विधायकों की संख्या और उनकी प्रतिबद्धता होगी।

इसलिए अखिलेश और शिवपाल दोनों ही चाहेंगे कि उनके समर्थकों को ज्यादा से ज्यादा टिकट मिल सकें और उनकी खेमेबंदी मजबूत हो सके। दोनों ही चुनाव के बाद मुख्यमंत्री की कुर्सी हासिल करने की होड़ में है।

2012 के विधानसभा चुनाव में सपा को पूर्ण बहुमत मिला और अखिलेश को मुख्यमंत्री की कुर्सी दे दी गई। वे साढ़े चार साल से इस पद पर तो हैं, लेकिन उनकी शक्तियाँ बहुत सीमित हैं और हाथ बंधे हुए हैं।

उनके पिता के अलावा भी पार्टी में कम से कम दो और सत्ता केंद्र हैं जो राज्य सरकार में अपनी चलाते हैं अखिलेश की हालत को देख कर राज्य में यह कहावत चल पड़ी है कि यहाँ साढ़े तीन मुख्यमंत्री काम कर रहे हैं। मुलायम, शिवपाल और पिछले विधानसभा चुनाव से पहले पार्टी में वापस लिए गए आजम खान ये तीन मुख्यमंत्री हैं और आधे मुख्यमंत्री खुद अखिलेश हैं।

चुनाव को नजदीक देखकर अखिलेश खास तौर पर इस दाग को छुड़ाना चाहते थे कि वे सिर्फ कठपुतली मुख्यमंत्री। उन्होंने अपनी छवि एक ईमानदार और बेहतर नेता के तौर पर पेश की हैं। वे इस वर्चस्व की लड़ाई में आगे निकलना चाहते थे। वे अब यह संदेश देना चाह रहे थे कि अगर उन्हें खुली छूट दी गई होती तो वे राज्य का और बेहतर विकास कर सकते थे।

सीधे–सीधे मुठभेड़ मोल लेते हुए उन्होंने अपने मंत्रिमण्डल से अपने पिता के विश्वस्त माने जाने वाले दो मंत्रियों गायत्री प्रजापित और राजकिशोर सिंह को भ्रष्टाचार के आरोप में हटा दिया। इसी तरह उन्होंने तीन महीने पहले बनाए गए शिवपाल के करीबी मुख्य सचिव दीपक सिंघल को हटा दिया और

उनकी जगह अपनी पसंद के राहुल प्रसाद भटनागर को यह पद दे दिया। इसके बाद उन्होंने सीधे शिवपाल पर हमला बोल दिया और उनके भी अहम् मंत्रालय उनसे छीन लिए।

इससे पहले अखिलेश ने कौमी एकता दल के सपा में विलय को यह कह कर रोक दिया था कि इससे पार्टी की छवि खराब होगी। कौमी एकता दल के मुख्य संरक्षक और वित्तपोषण करने वाले कोई और नहीं बल्कि कुख्यात अपराधी मुख्तार अंसारी है। यह विलय शिवपाल के नेतृत्व में हो रहा था और इसे मुलायम की भी सहमति थी।

राज्य में कानून–व्यवस्था की बदहाली के मुद्दे पर विपक्ष के हमले को देखते हुए हाल ही में अखिलेश ने राज्य पुलिस के शीर्ष अधिकारियों को कह दिया है कि अब अपराध को ले कर श्जीरो टोलरेंस की नीति अपनाई जाए।

मुलायम ने शिवपाल को उत्तर प्रदेश पार्टी का प्रमुख यह सोच कर ही बनाया है कि वे पार्टी कार्यकर्ताओं को व्यक्तिगत तौर पर अच्छी तरह जानते हैं और उनके व अखिलेश के बीच बेहतर कड़ी का काम करेंगे। इसलिए अखिलेश नहीं बल्कि शिवपाल ही टिकट वितरण में मुख्य भूमिका निभाएंगे, क्योंकि राजनीतिक जमीनी समझ उन्हीं को है और हर विधानसभा सीट पर जातीय गणित का ध्यान रखने में वे ज्यादा सक्षम हैं।

टिकट बंटवारे में अहम् भूमिका नहीं मिलने के बाद अखिलेश ने कुछ समय के लिए चुप्पी भले साध ली हो, लेकिन वे ज्यादा समय तक अपमान सहन करने वाले नहीं हैं और सही मौका देख कर पलटवार कर सकते हैं। अखिलेश ही पार्टी का मुख्य चेहरा थे और अब उन्हें ही किनारे किया जा रहा है, ऐसे में पार्टी को सबसे अहम् पहचान ही खतरे में है।

सपा को वोटरों के गुस्से का सामना करना पड़ सकता है और मुमकिन है कि मुलायम की ओर से अंतिम समय में की गई कोशिशें सत्ता में वापसी के लिए नाकाफी साबित हो। उत्तर प्रदेश में चुनाव जीतना जातीय गणित को साधना तो है ही लेकिन साथ ही यह भी उतना ही महत्वपूर्ण हो गया है कि आपके बारे में जनता की राय क्या है।

सपा जिन चुनौतियों का सामना कर रही है वह कोई अपवाद नहीं है और लगभग यही खतरे उन सभी क्षेत्रीय पार्टियों के ढांचे में ही निहित हैं जो या तो सत्ता पाने के लिए संघर्षरत हैं।

उदाहरण के तौर पर बहुजन समाज पार्टी उत्तर प्रदेश में चार बार सत्ता में रही और हर बार इसकी एकमात्र सर्वशक्तिमान नेता मायावती मुख्यमंत्री बनी। पार्टी की स्थापना 1984 में कांशी राम ने इस उद्देश्य के साथ की थी कि बहुजन समाज यानी दलित, आदिवासी, अन्य पिछड़ी जातियाँ (ओबीसी) और अल्पसंख्यकों को सत्ता में बेहतर प्रतिनिधित्व मिल सकें। स्वर्गीय कांशी राम ने पूर्व स्कूल अध्यापिका मायावती को अपना उत्तराधिकारी बनाया। उनकी मृत्यु के ऊपर ही टिक गया। उनके नेतृत्व को पार्टी में किसी और नेता की ओर से न तो चुनौती दी जा सकती है न ही कोई सवाल पूछा जा सकता है। उत्तर प्रदेश ही नहीं देश भर के बहुत से दलित उन्हें अपना नेता मानते हैं। हालांकि पार्टी ने अपने सिद्धांतों की प्रेरणा बाबा साहब भीमराव अंबेडकर, महात्मा ज्योतिबा फूले, पेरियार ईवी राममासामी और

छत्रपति शाहूजी महाराज से हासिल की है, लेकिन 1990 के दशक की शुरूआत में विधानसभा और लोकसभा के चुनाव जीतने के बाद मायावती ने अपना लक्ष्य और दर्शन किसी भी तरह सत्ता हासिल करना बना लिया है। वर्षों से अब बसपा को एकजुट रखने वाली ताकत वही है। इसलिए अब तो उनके बसपा की कल्पना भी करना नामुमकिन लगता है। जब तक कि वे अपने उत्तराधिकारी को तैयार करना शुरू नहीं कर दें। ऐसा लगता है कि उनके सामने नहीं रहने पर पार्टी के तितर–बितर हो जाने में देर नहीं लगेगी। आज के समय में पार्टी में ऐसा कोई नेता नहीं है, जो उनकी अनुपस्थिति में इसे चला सके।

इसी तरह मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश की ही एक और पार्टी राष्ट्रीय लोकदल की बात करें, जिसकी स्थापना पूर्व केंद्रीय मंत्री अजीत सिंह ने 1996 में की थी। राज्य के जाट बहुल जिलों में इसका प्रभाव है। अजीत सिंह को राजनीति की विरासत अपने पिता स्वतंत्रता सेनानी और पूर्व प्रधानमंत्री चौधरी चरण सिंह से मिली, मगर वे सत्ता में बने रहने के लिए कांग्रेस और भाजपा जैसी राष्ट्रीय पार्टियों सहित विभिन्न पार्टियों से गठबंधन करते रहे हैं ताकि सत्ता में प्रासंगिक बने रहें अब माना जा रहा है कि उनकी कमान जयंत चौधरी संभालेंगे जो मथुरा से एक बार सांसद भी रहे हैं।

पंजाब में शिरोमणि अकाली दल कई बार सत्ता में रही है लेकिन 1970 में जब प्रकाश सिंह बादल चौथे मुख्यमंत्री बने, उसके बाद से पार्टी में पूरी सत्ता उनके परिवार के ही पास केंद्रित हो गई हैं। भाजपा और अकाली का गठबंधन 2007 से सत्ता में हैं। प्रकाश सिंह बादल के बेटे राज्य के उप–मुख्यमंत्री हैं और पार्टी के अध्यक्ष भी हैं। सुखबीर सिंह बादल की पत्नी हरसिमरत कौर बादल केंद्र की भाजपा नेतृत्व वाली नरेंद्र मोदी सरकार में मंत्री भी हैं।

पड़ोस के राज्य हरियाणा में इंडियन नेशनल लोक दल (इनेलोद) की स्थापना पूर्व उप प्रधानमंत्री और दो बार मुख्यमंत्री रहे चौधरी देवीलाल ने अक्टूबर, 1966 में हरियाणा लोक दल के रूप में की जिसका नाम बदलकर 1998 में इनेलोद कर दिया गया। देवीलाल के बेटे ओमप्रकाश चौटाला पार्टी के मौजूदा अध्यक्ष हैं और चार बार राज्य के मुख्यमंत्री रहे हैं। ओमप्रकाश चौटाला के बेटे अजय सिंह चौटाला पार्टी के महासचिव हैं।

तमिलनाडु में द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम (डीमके) की स्थापना पहले गैर कांग्रेसी मुख्यमंत्री अन्नादुरै ने 1949 में की और इसने पहला विधानसभा चुनाव 1967 में जीता। तब से डीमके में बहुत से बदलाव आए हैं, जिनमें 1972 में हुआ, इसका विभाजन भी शामिल हैं। तब इसके कोषाध्यक्ष और लोकप्रिय फिल्म कलाकार एमजी रामाचंद्रन ने एक नई पार्टी गठित कर ली। जिसका नाम था ऑल इंडिया अन्ना द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम (एआइएडीएमके)। इसके बाद से राज्य में यही दो पार्टियाँ बारी–बारी से सत्ता संभाल रही हैं।

ये पार्टियाँ काफी हद तक अपने एकमात्र नेता की व्यक्तिगत जागीर में बदल गई है। डीएमके का नियंत्रण पांच बार मुख्यमंत्री रहे करुणानिधि के हाथ में है, जबकि एआईएडीएमके का ये पार्टियाँ काफी हद तक अपने एकमात्र नेता की व्यक्तिगत जागीर में बदल गई है। डीएमके का नियंत्रण पांच

बार मुख्यमंत्री रहे करुणानिधि के हाथ में है, जबकि एआईएडीएमके का नियंत्रण पहले एमजी रामाचंद्रन के हाथ में था और अब उनकी सहकर्मी रही। जे० जयललिता के हाथ में हैं। 1987 में एमजी रामाचंद्रन की मृत्यु के बाद से उनकी पार्टी की जिम्मेवारी जयललिता के हाथ में आ गई थी। वे भी पांच बार मुख्यमंत्री रही है।

हालांकि डीएमके प्रमुख करुणानिधि ने अनौपचारिक तौर पर अपने छोटे पुत्र एमके स्टालिन को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया है, लेकिन आने वाले समय में परिवार में इस बात को लेकर झगड़े की आशंका को नकारा नहीं जा सकता। खास कर जब इसके सर्वमान्य नेता नहीं रहेंगे।

इसी तरह एआइएडीएमके में भी इस पार्टी की सर्वोपरि नेता और मौजूदा मुख्यमंत्री जे० जयललिता के बाद यही समस्या आने वाली हैं। उन्होंने किसी नेता को अपने उत्तराधिकारी के रूप में भी विकसित नहीं किया है और पार्टी को बहुत कड़े अनुशासन के साथ चलाया है।

पश्चिम बंगाल में मुख्यमंत्री ममता बनर्जी और उनकी पार्टी ऑल इंडिया तृणमूल कांग्रेस अन्य क्षेत्रीय दलों से अलग नहीं है। यह भी एक व्यक्ति द्वारा संचालित होने वाली पार्टी है। ममता का आदेश ही आखिरी फैसला होता है। जिस पर पार्टी में कोई मशविरा होने का सवाल तक नहीं है। इस साल की शुरूआत में ममता के प्रभाव की वजह से ही पार्टी राज्य में तीन दशक तक राज करने वाली वामपंथी पार्टियों और भाजपा को पछाड़ कर दुबारा सत्ता में आ सकी है।

आंध्र प्रदेश और तेलंगाना में भी दो क्षेत्रीय दलों तेलगू देशम पार्टी (टीडीपी) और तेलंगाना राष्ट्र समिति (टीआरएस) का शासन है। आंध्र प्रदेश से अलग तेलंगाना राज्य बनाने की मांग को लेकर चले आंदोलन से ही 2001 में टीआरएस का जन्म हुआ था। 2014 में हुए राज्य के पहले विधानसभा चुनाव में यह पार्टी सत्ता में आई और इसके प्रमुख के चंद्रशेखर राव राज्य के पहले मुख्यमंत्री बने। राव पार्टी के अध्यक्ष भी हैं और राज्य के मुख्यमंत्री भी उनके पुत्र के०टी० रामाराव राज्य सरकार में मंत्री हैं और बेटी के कविता लोकसभा सांसद है।

इसी तरह टीडीपी के अध्यक्ष चंद्रबाबू नायडू आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री भी है। अपने ससुर एन०टी० रामाराव के निधन के बाद से उन्होंने ही पार्टी की कमान संभाली है और इस दौरान वे 1995 से 2004 तक मुख्यमंत्री रहे और अब वर्ष 2014 से दुबारा राज्य की कमान संभाल रहे हैं।

ओडिशा में बीजू जनता दल (बीजद) की स्थापना 1997 में हुई और इसके तीन साल बाद यह पार्टी सत्ता में आ गई, जिसके बाद से यह लगातार सत्ता में है। पूर्व मुख्यमंत्री बीजू पटनायक के पुत्र नवीन पटनायक ने लगातार चार विधानसभा चुनाव जीते हैं। पहली बार विधानसभा चुनाव जीतने के बाद उन्होंने तब की भाजपा नेतृत्व वाली अटल बिहारी वाजपेयी की राजग सरकार में केंद्रीय खनन मंत्री के पद से इस्तीफा दे दिया था। वर्ष 2000 का यह चुनाव उन्होंने भाजपा के साथ गठबंधन में ही लड़ा था। 2009 के विधानसभा चुनाव में बीजद ने भाजपा से चुनाव गठजोड़ तोड़ लिया। दूसरी क्षेत्रीय पार्टियों की तरह यहाँ भी नवीन पटनायक ही सभी फैसले लेते हैं। बीजद भी कई मामलों में दूसरी क्षेत्रीय पार्टियों से मेल खाती हैं।

जहाँ ये सभी क्षेत्रीय पार्टियाँ व्यक्ति आधारित और एक व्यक्ति या उसके परिवार से संचालित हो रही हैं, इनका भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि सत्ता का हस्तांतरण नए उत्तराधिकारी को कितनी आसानी से होता है। सत्ता परिवार के जितने ज्यादा सदस्यों के बीच बंटी होगी, पार्टी के बिखरने का खतरा उतना ही ज्यादा होगा। जैसा कि हम उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी के मामले में देख रहे हैं।

निष्कर्ष– प्रजातान्त्रिक शासन प्रणाली में क्षेत्रीय दलों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है, क्योंकि ये न केवल क्षेत्रीय समस्याएँ या मुद्दे जो उपेक्षित हैं कि तरफ देश का ध्यान आकर्षित करती है। बल्कि उसके निवारण के लिए प्रयास भी करती है। भारत में बहु–दलीय पार्टी व्यवस्था है। जिसमें छोटे क्षेत्रीय दल अधिक प्रबल हैं। राष्ट्रीय पार्टियाँ वे हैं जो चार या अधिक राज्यों में मान्यता प्राप्त हैं। उन्हें यह अधिकार भारत के चुनाव आयोग द्वारा दिया जाता है, जो विभिन्न राज्यों में समय–समय पर चुनाव परिणामों की समीक्षा करता है। इस मान्यता की सहायता से राजनीतिक दल कुछ पहचानों पर अपनी स्थिति की अगली समीक्षा तक विशिष्ट स्वामित्व का दावा कर सकते हैं। भारत के संविधान के अनुसार भारत में संघीय व्यवस्था है जिसमें नयी दिल्ली में केन्द्र सरकार तथा विभिन्न राज्यों व केन्द्र शासित राज्यों के लिए राज्य सरकार है। इसीलिए, भारत में राष्ट्रीय व राज्य (क्षेत्रीय), राजनीतिक दलों का वर्गीकरण उनके क्षेत्र में उनके प्रभाव के अनुसार किया जाता है।

संदर्भ सूची

1. https://www.pravakta.com/the-role-of-regional-political-parties-in-india/
2. https://www.orfonline.org/hindi/research
3. https://www.bbc.com/hindi/india-51153224

16वीं एवं 17वीं लोकसभा चुनाव का जनादेश : भारतीय जनता पार्टी का बढ़ता जनाधार

महेश कुमार

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग

राज ऋषि भर्तृहरि मत्स्य युनिवर्सिटी, अलवर

राजस्थान, भारत

शोध आलेख सार

विश्व में सबसे बड़ा चुनावी पर्व भारत में संपन्न होता है। अब तक भारत में कुल 17 लोकसभा चुनाव हो चुके हैं। वर्ष 2019 में वर्तमान लोकसभा के चुनाव हुए तो इस चुनावी जनादेश ने भारतीय जनता पार्टी को 2014 में सम्पन्न हुए 16वीं लोकसभा चुनाव की तुलना में अधिक मजबूत स्थिति में पहुंचा दिया। राजनैतिक पंडितों ने जो कयास लगाए थे कि इस बार भारतीय जनता पार्टी की स्थिति कमजोर रहेगी, वह असत्य सिद्ध हुई। परन्तु वर्ष 2019 के चुनावी जनादेश ने सभी राजनैतिक विद्वानों व बुद्धिजीवी वर्ग को यह कहने पर विवश कर दिया है कि भारत में भारतीय जनता पार्टी को कोई दूसरा विकल्प नहीं हो सकता। इस पार्टी ने भारत की सर्वाधिक प्राचीन पार्टी कांग्रेस को विपक्ष में बैठने तक का भी अवसर नहीं दिया। इसमें श्री नरेन्द्र मोदी व अमित शाह की जोड़ी ने धुआंधार चुनावी प्रचार करके समस्त भारतवर्ष में एक नंबर की पार्टी बना दिया। इसने क्षेत्रीय दलों की तुलना में कांग्रेस का ज्यादा नुकसान किया। कांग्रेस का वोट बैंक खिसक कर भारतीय जनता पार्टी के पक्ष में चला गया और 2019 का चुनावी जनादेश भारतीय जनता पार्टी को मजबूत स्थिति में ले जाने वाला सिद्ध हुआ। प्रस्तुत शोध पत्र में 16वीं एवं 17वीं चुनावी लोकसभा चुनाव के बाद उत्पन्न दलीय स्थिति व चुनावी जनादेश का विश्लेषण किया गया है।

यू.पी.ए., एन.डी.ए., कांग्रेस, विश्व में सबसे बड़ा चुनावी पर्व भारत में संपन्न होता है। अब तक भारत में कुल 17 लोकसभा चुनाव हो चुके हैं। वर्ष 2019 में वर्तमान लोकसभा के चुनाव हुए तो इस चुनावी जनादेश ने भारतीय जनता पार्टी को 2014 में सम्पन्न हुए 16वीं लोकसभा चुनाव की तुलना में अधिक मजबूत स्थिति में पहुंचा दिया। राजनैतिक पंडितों ने जो कयास लगाए थे कि इस बार भारतीय जनता पार्टी की स्थिति कमजोर रहेगी, वह असत्य सिद्ध हुई। परन्तु वर्ष 2019 के चुनावी जनादेश ने सभी राजनैतिक विद्वानों व बुद्धिजीवी वर्ग को यह कहने पर विवश कर दिया है कि भारत में भारतीय जनता पार्टी को कोई दूसरा विकल्प नहीं हो सकता। इस पार्टी ने भारत की सर्वाधिक प्राचीन पार्टी कांग्रेस को विपक्ष में बैठने तक का भी अवसर नहीं दिया। इसमें श्री नरेन्द्र मोदी व अमित शाह की जोड़ी ने धुआंधार चुनावी प्रचार करके समस्त भारतवर्ष में एक नंबर की पार्टी बना दिया। इसने क्षेत्रीय दलों की

तुलना में कांग्रेस का ज्यादा नुकसान किया। कांग्रेस का वोट बैंक खिसक कर भारतीय जनता पार्टी के पक्ष में चला गया और 2019 का चुनावी जनादेश भारतीय जनता पार्टी को मजबूत स्थिति में ले जाने वाला सिद्ध हुआ। प्रस्तुत शोध पत्र में 16वीं एवं 17वीं चुनावी लोकसभा चुनाव के बाद उत्पन्न दलीय स्थिति व चुनावी जनादेश का विश्लेषण किया गया है। भारतीय जनता पार्टी, चुनावी जनादेश।

मूलशब्द– भारतीय राजनीति, राजनीतिक दल, यू.पी.ए., एन.डी.ए., कांग्रेस, विश्व।

शोध–पत्र

भूमिका– वस्तुतः वर्ष 1989 के बाद केन्द्र में क्षेत्रीय दलों की बढती भूमिका ने गठबंधन की राजनीति को जन्म दिया। यदि भारत के संसदीय चुनावों के इतिहास का अवलोकन किया जाए तो यह बात सिद्ध होती है कि 1989 के बाद निरंतर क्षेत्रीय दल लाभ की स्थिति में रहे हैं। चूंकि 16वीं और 17वीं लोकसभा के चुनाव के अवसर पर एन.डी.ए. गठबंधन वाली भारतीय जनता पार्टी की सीटें बहुमत के पार रही। इसके बावजूद भी भारतीय जनता पार्टी ने अपने गठबंधन के साथियों को सरकार में शामिल किया। इससे पहले 14वीं व 15वीं लोकसभा के चुनावी परिणाम यू.पी.ए. गठबंधन के पक्ष में रहे थे, परन्तु कांग्रेस अकेली बहुमत के आंकड़े को नहीं छू सकी। इसलिए श्री मनमोहन सिंह के नेतृत्व वाली यू.पी.ए.–1 और यू.पी.ए.–2 सरकारें सौदेबाजी की राजनीति से प्रभावित रही और इस समय देश में अनेकों घोटाले हुए। देश में बढ़ते व्याप्त भ्रष्टाचार की राजनीति ने मतदाताओं को यह सोचने पर विवश कर दिया कि यू.पी.ए. गठबंधन सरकार को सत्ता से हटाया जाए और नए विकल्प के तौर पर एन.डी.ए गठबंधन को सत्तारूढ किया जाए। इसी कारण वर्ष 2019 में लोकसभा चुनाव में यह पहला अवसर था जब एन.डी.ए. गठबंधन को सर्वाधिक सीटें प्राप्त हुई और केन्द्र में दूसरी बार श्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में गठबंधन की सरकार बनी।

भारतीय जनता पार्टी की दलीय स्थिति– 17वीं लोकसभा के चुनाव के परिणामों ने सभी को सकते में डाल दिया। मोदी फैक्टर की आंधी में कई क्षेत्रीय दल धराशायी हो गए। इस बार देश की राजनीति से परिवारवाद और जातिवाद जाता दिखाई दिया। इस चुनाव के अवसर पर लगभग 90 करोड़ मतदाता थे। चुनाव के लिए देशभर में लगभग 10 लाख मतदान केन्द्र स्थापित किए गए। भारी पुलिस व अर्धसैनिक बलों के साये में अपराधिक प्रवृति से ये चुनाव मुक्त रहे। विकास और सुशासन के मुद्दे को इस बार भी आधार बनाया गया। 16वीं एवं 17वीं लोकसभा के चुनावी परिणामों में भारतीय जनता पार्टी की दलीय स्थिति इस प्रकार रही–

16वीं (2014) एवं 17वीं (2019) लोकसभा चुनाव के परिणामों का विश्लेषण

तालिका

क्र.	राज्य	कुल सीटें	2014	2019	अंतर	प्रतिशत		अंतर
						2014	2019	
1	उत्तरप्रदेश	80	71	62	-9	43%	50%	+7

2	पश्चिम बंगाल	42	2	18	+16	17%	40%	+23
3	महाराष्ट्र	48	23	23	0	28%	28%	0
4	बिहार	40	22	17	-5	30%	24%	-6
5	तमिलनाडु	38	1	0	-1	6%	3%	-3
6	मध्यप्रदेश	29	27	28	+1	55%	58%	+3
7	कर्नाटक	28	17	25	+8	43%	51%	+8
8	गुजरात	26	26	26	0	60%	62%	+2
9	आंध्रप्रदेश	25	2	0	-2	7%	1%	-6
8	राजस्थान	25	25	24	-1	56%	58%	+2
9	उड़ीसा	21	1	8	+7	22%	38%	+16
10	केरल	20	0	0	0	10%	13%	+3
11	तेलंगाना	17	1	4	+3	9%	19%	+10
12	झारखंड	14	12	11	-1	41%	51%	+10
13	असम	14	7	9	+2	37%	36%	-1
14	पंजाब	13	2	2	0	9%	10%	+1
15	छत्तीसगढ़	11	10	9	-1	25%	51%	+26
16	हरियाणा	10	7	10	+3	35%	58%	+23
17	दिल्ली	7	7	7	0	47%	57%	+10
18	जम्मू कश्मीर	6	3	3	0	33%	46%	+13
19	उत्तराखंड	5	5	5	0	56%	61%	+5
20	हिमाचल प्रदेश	4	4	4	0	54%	69%	+15
21	गोवा	2	2	1	-1	55%	51%	-4
22	मेघालय	2	0	0	0	9%	8%	-1
23	अरूणाचल प्रदेश	2	1	2	+1	47%	58%	+11
24	मणिपुर	2	0	1	+1	12%	34%	+22
25	त्रिपुरा	2	0	2	+2	6%	49%	+43

26	मिजोरम	1	0	0	0	0%	6%	+6
27	नागालैंड	1	0	0	0	0%	0%	0
28	सिक्किम	1	0	0	0	2%	5%	+3
29	दादर–हवेली	1	1	0	-1	50%	41%	-9
30	लक्षद्वीप	1	0	0	0	1%	0%	-1
31	चण्डीगढ	1	1	1	0	43%	50%	+7
32	पांडिचेरी	1	0	1	-1	36%	31%	-5
33	अण्डमान निकोबार	1	1	0	-1	48%	45%	-3
34	दमन द्वीव	1	1	1	0	55%	43%	-12
	कुल	**542**	**282**	**303**	**+21**	**31%**	**38%**	**+7**

इस तालिका का विश्लेषण करने से स्पष्ट हो जाता है कि वर्ष 2014 की तुलना में भारतीय जनता पार्टी को 2019 के चुनाव में पं.बंगाल, कर्नाटक, उड़ीसा, तेलंगाना, असम, हरियाणा, त्रिपुरा, मणिपुर, अरूणाचल प्रदेश, जैसे राज्यों में अधिक सीटें मिली। भारतीय जनता पार्टी का जनाधार जिन राज्यों में कमजोर रहा, वे राज्य उत्तरप्रदेश, बिहार, आंध्रप्रदेश, झारखंड, राजस्थान, छत्तीसगढ, दादर नगर हवेली, पांडिचेरी आदि हैं। जिन राज्यों में भारतीय जनता पार्टी को वर्ष 2014 के चुनाव की तुलना में जनादेश में कोई अंतर नहीं आया, वे हैं– महाराष्ट्र, गुजरात, केरल, पंजाब, दिल्ली, जम्मू–कश्मीर, उतराखंड, हिमाचल प्रदेश, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, सिक्किम, चण्डीगढ, लक्ष्यद्वीप, दमनदीव।

मतदान व्यवहार– इस चुनाव में भारतीय जनता पार्टी के सहयोगी दलों ने भाजपा को पूर्ण सहयोग दिया और बहुमत का आंकड़ा 355 पर पहुंच गया। चूंकि चुनाव से पहले ही सभी राजनैतिक दलों ने अपने–अपने घोषणापत्रों में लोक लुभावने वायदे किए थे, परन्तु भारतीय जनता पार्टी के आगे यू.पी.ए. गठबंधन टिक नहीं पाया। चुनाव से पहले पुलवामा आतंकवादी हमले ने और इसका बदला लेने के लिए मोदी सरकार द्वारा पाकिस्तान पर की गई सर्जिकल स्ट्राईक ने भाजपा का जनाधार काफी मजबूत किया। भारतीय मतदाता इस बात को समझ गए कि भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व में ही देश की सीमाएं सुरक्षित हैं। इससे यह परिणाम निकलता है कि 16वीं लोकसभा चुनाव में अकेले बीजेपी दल को कुल 282 सीटें प्राप्त हुई थी। वे उत्तरोतर 17वीं लोकसभा में बढ़कर 303 हो गई। साथ–साथ मतदान प्रतिशत में भी बीजेपी ने 16वीं लोकसभा की तुलना में 17वीं लोकसभा में 7 प्रतिशत मत अधिक प्राप्त किये।

चूंकि जातिवाद भारतीय राजनीति की एक अनोखी विशेषता है। जयप्रकाश नारायण ने तो जातिवाद को ही एक महत्वपूर्ण राजनैतिक दल माना है। इसका तात्पर्य यह है कि बिना जातिवाद के सहारे के कोई भी नेता नहीं बन सकता। परन्तु इस चुनाव में जातिवादी आधार रखने वाली अधिकांश पार्टियों को हार का सामना करना पड़ा। इस बार भारतीय मतदाताओं ने दिखा दिया कि जातिवाद से देश अधिक महत्वपूर्ण है। देश की एकता और अखंड़ता का मुद्दा इस चुनाव में महत्वपूर्ण रहा। श्री नरेन्द्र मोदी और अमित शाह ने सभी चुनावी रैलियों में राष्ट्रीय एकता की बात की। इससे भारतीय मतदाता आकर्षित हुए और मतदान व्यवहार भारतीय जनता पार्टी के पक्ष में रहा।

भारत में धार्मिक आधार पर भी कई राजनैतिक दल बने हुए हैं। इनमें पंजाब का अकाली दल, महाराष्ट्र की शिवसेना, जम्म कश्मीर की नेशनल काफ्रेंस आदि प्रमुख हैं। हिन्दू महासभा तथा मुस्लिम लीग भी धर्म की राजनीति करते हैं। परन्तु इस चुनाव में श्री नरेन्द्र मोदी ने '**तीन तलाक**' के मुद्दे को जनता के बीच में रखा। इससे मुस्लिम महिला मतदाताओं ने भारतीय जनता पार्टी को वोट दिया। इससे भारतीय जनता पार्टी को कई सीटों पर लाभ हुआ। परन्तु धर्म का परंपरागत स्वरूप मतदान को प्रभावित नहीं कर पाया।

इस चुनाव में भी एन.डी.ए. सरकार ने विकास और सुशासन की बात की और देश को आगे तक ले जाने की बात मतदाताओं के सामने रखी। भ्रष्टाचार मुक्त प्रशासन की चाह में भारतीय मतदाताओं ने एक बार पुनः अपना वोट एन.डी.ए. के पक्ष में दिया।

क्षेत्रवाद की राजनीति से हटकर भी मतदाताओं ने अपना वोट अपने क्षेत्रीय दलों को न देकर प्रमुख राष्ट्रीय दल भारतीय जनता पार्टी को ही मतदान किया। इससे भातीय जनता पार्टी को एक बार फिर से देश में मजबूत सरकार बनाने का जनादेश प्राप्त हुआ। लेकिन चुनाव विश्लेषकों के एक वर्ग का मानना है कि भारतीय जनता पार्टी ने क्षेत्र, भाषा, जाति व परिवार आधारित राजनीति पर तो प्रहार किया है। लेकिन बीजेपी ने कहीं न कहीं अपने हिन्दुत्ववादी विचारधारा को बढ़ावा देकर धार्मिक, राजनीति की शुरूआत की है। लेकिन यह केवल एक पक्ष का कहना है।

भावी कार्यक्रम व नीतियां– अधिकांश राजनैतिक विद्वानों का मानना है कि भारतीय जनता पार्टी ही एक ऐसा राजनैतिक दल है जिसका अपना भावी कार्यक्रम व नीतियां हैं। अगस्त 2019 में जम्मू–कश्मीर को दो संघशासित क्षेत्रों में बांटकर तथा धारा 370 एवं 35ए को समाप्त करके अपने इरादे भारतीय जनता पार्टी ने व्यक्त कर दिए हैं। अब भारतीय जनता इस बात को भली भांति समझती है कि भाजपा सरकार की कथनी और करनी में कोई अंतर नहीं है। सरकार के पास अपना एक भावी दृष्टिकोण है। इसी के आधार पर सरकार देश को विकास के मार्ग पर ले जाना चाहती है। श्री नरेन्द्र मोदी के योग्य नेतृत्व के कारण ही विदेशों में भी भारत की साख बढ़ी है। आंतकवाद के मुद्दे पर अमेरिका जैसे बड़े देश भी भारत के पक्ष में बात करते हैं। अभी हाल ही में भारतीय जनता पार्टी ने 'नागरिकता संशोधन बिल' संसद में पास कराने हेतू अपने प्रयास तेज कर दिए हैं। आने वाले समय में यह पार्टी 'एक समान

नागरिक संहिता' को अपना प्रमुख मुद्दा बनाकर चलेगी। भावी चुनाव में भी ऐसा लगता है कि देश के पास भाजपा के सिवाय कोई दूसरा विकल्प नहीं है।

सारांश– अतः 2014 की तुलना में वर्ष 2019 का चुनावी जनादेश भी भारतीय जनता पार्टी के पक्ष में रहा। इस चुनाव में भारतीय जनता पार्टी 303 के आंकड़े पर पहुंच गई। पूर्वांचल में पार्टी का आधार मजबूत हुआ और मोदी फैक्टर की आंधी में परिवारवाद और जातिवाद की राजनीति से पोषित कई राजनैतिक दल धराशायी हो गए। चूंकि चुनाव के बाद फिर से श्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में एक मजबूत सरकार हमें मिली हैं, परन्तु अभी हाल ही में महाराष्ट्र में शिवसेना ने अपनी सहयोगी पार्टी भाजपा का साथ छोड़ दिया है। इसलिए आने वाले समय में हो सकता है कि और भी सहयोगी दल भारतीय जनता पार्टी का साथ छोड़ दें। अतः इस बात की महती आवश्यकता है कि 'सबका साथ–सबका विकास' के मुद्दे पर ध्यान दिया जाए।

सन्दर्भ सूची–

1. सत्यप्रकाश, ''संसदीय प्रजातंत्र में राजनैतिक दलों की भूमिका'', लोकतंत्र समीक्षा, अंक 1–4, जनवरी–दिसंबर 1991.
2. एस.एन.जैन, ''भारत में संसदीय लोकतंत्रः एक मूल्यांकन'', लोकतंत्र समीक्षा, अंक 1–4, जनवरी–दिसंबर 2001.
3. मानचंद खण्डेला, भारतीय राजनीति का बदलता परिदृश्य, अविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, 2005.
4. राजनाथ सिंह, ''सत्ता नहीं, देश के लिए समर्पित राजनीति की जरूरत'', हरिभूमि, रोहतक, 26 जून 2008.
5. ए.जी.नूरानी, ''लोकतंत्र में विश्वासमत का अर्थ'', दैनिक भास्कर, हिसार, 19 जुलाई 2008.
6. बी.सी.नरूला, भारतीय राजनैतिक व्यवस्था, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2010.
7. नृपेन्द्र मिश्र, ''नये दौर में बदलाव जरूरी'', दैनिक भास्कर, हिसार, 3 अगस्त 2012.
8. एम.आर.माघवन, ''संसदीय लोकतंत्र में सुधार'', दैनिक जागरण, हिसार, 18 अगस्त 2012.
9. बी.एल.फाडिया एवं पुखराज जैन, भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन, आगरा, 2018
10. दैनिक भास्कर, रोहतक, 24 मई 2019.
11. दॉ हिन्दुस्तान टाईम्स, नई दिल्ली, 24 मई 2019.
12. दैनिक भास्कर, रोहतक, 10 दिसम्बर 2019.

समकालीन विश्व में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का औचित्य

जोगिन्द्र सिंह

एम.फिल. एवं नेट

राजनीति विज्ञान विभाग

हरियाणा, भारत

शोध आलेख सार

गुट निरपेक्ष आन्दोलन उपनिवेशवादी शासन से मुक्त एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के देशों का आन्दोलन है। इन देशों की आर्थिक व राजनीतिक विकास की समस्याएं लगभग एकसमान हैं। इन देशों को तीसरी दुनिया के देश भी कहा जाता है। इसका कारण यह है कि जहां पहली दुनिया में अमेरिका सहित पश्चिम के पूंजीवादी देशों को शामिल किया जाता था और सोवियत संघ के नेतृत्व में विकसित साम्यवादी देशों को दूसरी दुनिया के देशों में शामिल किया जाता था। दिसम्बर 1991 में सोवियत संघ और उसके गुट के विघटन के बाद गुटनिरपेक्ष आन्दोलन ने ध्रुवीकरण के खतरों और शीतयुद्ध के तनाव को कम करने का अथक प्रयास किया है। आज भी गुटनिरपेक्ष देश वैश्विक हितों जैसे– स्वतंत्रता, निःशस्त्रीकरण, जलवायु परिवर्तन, आतंकवाद, विश्वशांति तथा सुरक्षा व सहयोग जैसे महत्वपूर्ण सिद्धान्तों पर जोर दे रहा है।

मूलशब्द– उपनिवेशवाद, स्वतंत्रता, निःशस्त्रीकरण, विश्वशांति।

शोध–पत्र

भारत व गुटनिरपेक्ष आन्दोलन– भारत गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की स्थापना करने वाले देशों में से एक है। भारतीय प्रधानमंत्री नेहरू के नेतृत्व में भारत ने ही सबसे पहले गुटनिरपेक्षता की नीति को अपनी विदेश नीति के रूप में अपनाया था और लागू भी किया था। भारतीय प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू के अनुसार गुटनिरपेक्षता की नीति गुटों से अलग रहने की एक नकारात्मक अवधारणा न होकर सकारात्मक अवधारणा है। जिसका तात्पर्य विदेश नीति की स्वतंत्रता से है। वर्तमान समय में भारतीय विदेश–नीति में सामरिक स्वायत्ता का विचार गुटनिरपेक्षता की नीति से ही प्रभावित है। भारत ने शीत युद्ध के समय में औपनिवेशवाद, रंग–भेद की नीति की समाप्ति तथा जातीय असमानता का विरोध विश्व–शांति व निःशस्त्रीकरण आदि महत्वपूर्ण सिद्धान्तों पर कार्य किया। भारत ने शीतयुद्ध की समाप्ति के बाद गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की उपादेयता को स्वीकार किया था और आज भी कर रहा है। गुटनिरपेक्षता के प्रमुख सिद्धान्त जिन पर भारत आज भी कायम है और आज भी विश्वास करता है।

1. राष्टों की सम्प्रभुता, समानता, क्षेत्रीय अखण्डता तथा राजनीतिक स्वतंत्रता में विश्वास।

2. विश्व–शांति, सुरक्षा तथा अन्तर्राष्ट्रीय कानून का पालन तथा इस उद्देश्य के लिए स्थापित संस्थाओं में आस्था और विश्वास।
3. उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद तथा नव–उपनिवेशवाद का विरोध।
4. विकासशील देशों के मध्य सहयोग को बढावा देना, जिससे दक्षिण–दक्षिण के सहयोग के रूप में जाना जाता है।
5. निःशस्त्रीकरण का समर्थन करता है और राष्ट्रों के मध्य शस्त्रों की दौड़ का विरोध करता है।
6. रंगभेद की नीति तथा जातीय असमानता का विरोध करता है।
7. स्वतंत्रता, समानता न्याय तथा आपसी सहयोग व लाभ पर आधारित एक नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था का समर्थन करता है।

भारत के गुटनिरपेक्ष नीति को अपनाने के कारण–

1. सैन्य गुट में शामिल होने का मतलब था कि भारत के आन्तरिक मामलों में महाशक्तियों का हस्तक्षेप होना।
2. भारत ने मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया, जिसमें सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्र मौजूद होते हैं। इस प्रकार भारत साम्यवादी और पूंजीवादी दोनों गुटों से अलग रहा।
3. एक नये स्वतंत्र राष्ट्र होने के नाते भारत के पास सीमित संसाधन थे। भारत किसी भी सैन्य गुट में शामिल न होकर किसी भी आवंछित सैन्य व्यय से बचना चाहता था।
4. भारत दोनों गुटों से सम्बन्धों को बनाये रखना चाहता था तथा आर्थिक सहायता प्राप्त करना चाहता था।

समकालीन विश्व में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का औचित्य–

दिसम्बर 1991 में सोवियत संघ के विघटन तथा शीत युद्ध की समाप्ति के बाद कई समीक्षकों तथा विश्लेषकों ने सवाल उठाया कि वर्तमान परिवेश में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन औचित्यहीन हो गया है। यह बात सच है कि गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की उत्पति 1960 के दशक में महाशक्तियों के दो सैन्य गुटों में विभाजित शीत युद्ध के परिवेश में हुई थी। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि गुट निरपेक्ष आन्दोलन का उद्देश्य केवल गुटों से अलग रहने की नीति तक ही सीमित नहीं था बल्कि इसका सही अर्थ गुटबंदी से दूर रहकर अपनी मान्यताओं के आधार पर स्वतंत्र विदेश नीति का पालन करना है। स्वतंत्र विदेश नीति की आवश्यकता आज भी बनी हुई है। वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश में गुट निरपेक्ष आन्दोलन के महत्व को हम निम्न बिन्दुओं के माध्यम से समझते हैं–

1. सोवियत संघ के विघटन के बाद शीत युद्ध का अंत हो गया। सोवियत संघ के सैन्य गठबंध वार्सा पैक्ट का भी विघटन हो गया। परिणामस्वरूप विश्व राजनीति में एक ध्रवीय विश्व व्यवस्था के लक्षण दिखाई देने लगे क्योंकि अमेरिका व पश्चिमी देशों के सैन्य गठबंधन नाटो का अस्तित्व ज्यों का त्यों बना रहा। इसके विपरीत 'नाटो' का पूर्वी यूरोप के देशों में विस्तार किया गया। वर्तमान में 'नाटो' एक 'वैश्विक पुलिसमैन' की तरह है। इस एक ध्रुवीय विश्व व्यवस्था में

विकासशील देशों की राजनीतिक तथा आर्थिक स्वतंत्रता के खतरे बढ़ गए हैं। अतः एक नैतिक संतुलनकारी मंच के रूप में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन विकासशील देशों की विदेश–नीति की स्वतंत्रता बनाए रखने के लिए आज भी आवश्यक है।

2. वर्तमान युग वैश्वीकरण का युग है, जिसमें नव–उदारवादी विचारधारा से समर्थित बाजारू प्रतियोगिता की उत्कृष्टता का सिद्धान्त स्वीकार किया गया है। वर्तमान विश्व व्यवस्था में वही देश आर्थिक रूप से सफल हो सकते हैं जो आर्थिक व तकनीकी रूप से विश्व व्यवस्था की प्रतियोगिता का सामना करने में समर्थ हैं। अतः वर्तमान असंतुलित विश्व अर्थव्यवस्था विकासशील देशों के हितों की सुरक्षा के लिए इन्हें एक मंच की आवश्यकता है और वह मंच गुटनिरपेक्ष देशों का संगठन है। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन सामूहिक रूप से इनके आर्थिक हितों की सुरक्षा के लिए आवश्यक है। विश्व व्यापार वार्ताओं तथा जलवायु परिवर्तन वार्ताओं आदि में विकासशील देशों के पक्ष को सशक्त रूप से प्रस्तुत करने के लिए एक प्रभावी मंच की आवश्यकता है। इस दृष्टि से गुटनिरपेक्ष आन्दोलन विकासशील देशों तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ के बाद दक्षिणी देशों का सबसे बड़ा संगठन व मंच है।
3. वर्तमान समय में विश्व की बहुत सी समस्याएं ऐसी हैं जिन पर विकसित तथा विकासशील देशों में मतभेद है। इस प्रकार इन समस्याओं के समाधान के लिए आपसी सहयोग की आवश्यकता है। वर्तमान वैश्विक समस्याओं जैसे आतंकवाद, मानवाधिकारों का उल्लंघन, जलवायु परिवर्तन, काला धन तथा अन्तराष्ट्रीय संस्थाओं में सुधार आदि के समाधान के लिए एक–दूसरे के आपसी सहयोग की आवश्यकता है। इस प्रकार गुटनिरपेक्ष आन्दोलन एक सशक्त माध्यम सिद्ध हो सकता है।
4. विकासशील देशों में सामूहिक आत्मनिर्भरता तथा विकास की प्रक्रिया को आगे बढाने के लिए आपसी सहयोग की आवश्यकता है, जिसे दक्षिण–दक्षिण सहयोग के नाम से जाना जाता है। वर्तमान समय में दक्षिण–दक्षिण सहयोग की प्रबल संभावनाएं मौजूद हैं क्योंकि विकासशील देशों में कई देश जैसे– भारत, ब्राजील व दक्षिण अफ्रीका आदि तकनीकी व आर्थिक दृष्टि से काफी आगे बढ चुके हैं। इन तीन देशों ने दक्षिण–दक्षिण सहयोग को आगे बढाने के लिए 2003 में 'इब्सा' नामक संगठन की स्थापना की। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन आज भी 'दक्षिण–दक्षिण' सहयोग के लिए प्रतिबद्ध है तथा इसको आगे बढाने के लिए व्यापक तथा महत्वपूर्ण मंच है।

निष्कर्ष– गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को विश्व की समकालीन चुनौतियां जैसे– आतंकवाद, जलवायु परिवर्तन तथा वैश्विक संस्थाओं में सुधार, जीवन्त विकास तथा दक्षिण–दक्षिण सहयोग व उतर–दक्षिण सहयोग आदि के लिए अपनी प्रभावी भूमिका निभा रहा है। वैश्वीकरण तथा तीव्र तकनीकी विकास के कारण 21वीं सदी में अप्रत्याशित बदलाव हो रहे हैं। इसलिए गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के माध्यम से सदस्य देश विश्व के देशों के साथ मिलकर जीवन्त विकास तथा विश्व शान्ति, विश्व कल्याण को प्राप्त करने का प्रयास करेगें। अतः मैं फिर से कहना चाहूंगा कि गुटनिरपेक्ष आन्दोलन ने समसामयिक मुद्दों तथा

समसामयिक चुनौतियों को अपने अन्दर समाहित कर लिया है और इन मुद्दों तथा चुनौतियों के समाधान के लिए भरसक प्रयास कर रहा है। इस प्रकार इस आन्दोलन की प्रासांगिकता आज भी बनी हुई है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. डॉ. बी.सिंह गहलोत, 'भारतीय विदेश नीति', अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, दरियागंज, दिल्ली, 2016.
2. दिनेशचन्द्र पाण्डेय, द्वि–ध्रुवीयता में गुटनिरपेक्षता, 'हिन्दी ग्रन्थ अकादमी प्रभाग', लखनऊ, 1977.
3. वी.पी.पाण्डेय, 'गुटनिरपेक्षता की राजनीति व विश्वशान्ति की मृगतृष्णा, 'दुर्गा पब्लिकेशन्स', दिल्ली, 1998.
4. डॉ. प्रामिला श्रीवास्तव, '–Non-Aligned Movement Extending Frontiers, नई दिल्ली, कनिष्का पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर, नई दिल्ली, 2001
5. प्रोफेसर डॉ. लल्लन जी सिंह, 'राष्ट्रीय सम्बन्धों पर युद्ध का प्रभाव–1945 से'', प्रकाश बुक डिपो, बरेली, 1999.
6. आर.एस.यादव, 'भारत की विदेश नीति', पीयरसनस पब्लिकेशन्स, 2013.
7. रचना सुचिन्मयी, 'समसामयिक राजनीतिक मुद्दे', रावत पब्लिकेशन्स, 2016.
8. डॉ. सुदीप कुमार, 'गुटनिरपेक्ष आन्दोलन एक सिंहावलोकन', 21st Century Publications, पटियाला, 2012.

समुदायवाद और इच्छास्वतंत्रतावाद का तुलनात्मक अध्ययन

भरत मौर्य

सहायक प्रोफेसर

चौधरी बंसीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी

हरियाणा, भारत

शोध आलेख सार

अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी की महान विचारधाराएँ मसलन, समाजवाद, अनुदारवाद, उदारवाद में से प्रत्येक स्वतंत्रता, समानता और समुदाय की संकल्पना को पेश करता है। समुदायवाद में नैतिक कर्ता के रुप में व्यक्तियों की पूरी पहचान अर्थात् उनका शुभ और उनकी क्षमता इन समुदायों में बंध जाती है, जिनसे वे जुड़े होते है और नैतिक कर्ता के रुप में उनकी पूरी पहचान और क्षमता उन विशिष्ट सामाजिक और राजनीतिक भूमिकाओं से भी बंध जाती है जिन पर उनका कब्जा होता है। स्वतंत्रतावादी बाजार को आजादियों एंव व्यक्ति का अपनी शरीर, योग्यता, परिश्रम दिमाग की स्वतंत्रता को अनिवार्य मानते है। दोनों विचारधाराओं के विश्लेषणात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि समकालीन समाज को जितनी आवश्यकता स्वतंत्रता की है उससे अधिक आवश्यकता सामुदायिक जीवन की है। विश्व बहुआयामी तकनीकिगत, और इंटरनेट के दौर से गुजर रहा है, ऐसी स्थिति में स्वतंत्रता अनिवार्य है, तो अलगाव और बिखराव से बचने के लिए सामुदायवादी विचार अपरिहार्य।

मूलशब्द– वितरण कर, स्वतंत्रतावाद, संवेदनशील–समुदाय, अनुभवमूलक विखण्डन।

शोध–पत्र

परिचयः– स्वतंत्रतावादी बाजार की आजादी को उचित मानते है। समानता के उदारवादी सिद्धांत को लागू करने के लिए वितरण कर लगाने की योजनाओं का विरोध करते है। मनुष्य को तर्कशील प्राणी मानते है। इसलिए उसे बाधारहित स्वतंत्रता प्रदान करना चाहते है, जिसमें उनमुक्त पूंजीवाद के पक्ष में एक तर्क इसकी उत्पादकता है, जो सामाजिक संपति को बढ़ाने में सबसे अधिक समर्थ है। इससे निरंकुश शासन को खतरा कम से कम हो जाता है। जैसे कि हेयक ने कहा है नियमन दासता के रास्ते की ओर पहला कदम है और नागरिक तथा राजनीतिक स्वतंत्रताओं को सुरक्षित रखने के लिए पूँजीवादी आजादियों की जरुरत है। समुदायवादी तटस्थ–राज्य पर आपत्ति करते हैं। वे मानते है कि इसे "सामान्य हित की राजनीति" के लिए छोड़ देना चाहिए (सैण्डल 1984)। उदारवादी राजनीति में भी एक सामान्य हित मौजूद है, क्योंकि उदारवादी राज्यों की नीतियों का उद्देश्य समुदाय के सदस्यों के हितो को बढ़ावा देना है। वे राजनीतिक और आर्थिक वरीयताएँ जिससे व्यक्तिगत वरीयताएँ सामाजिक चयन

कार्य से जुड़ती है, सामान्य हित को निर्धारित करने की उदारवादी विधियां है। एक उदारवादी समाज में सामान्य हित, समान रुप से गणना की जाने वाली वरीयताओं के जुड़ने का नतीजा है। समुदायवादी समाज में सामान्य हित को उत्तम जीवन की एक तात्विक संकल्पना के रुप में माना जाता है, सामान्य हित एक ऐसा मानक उपलब्ध करता है जिससे इन वरीयताओं का मूल्यांकन किया जाता है। समुदाय की जीवन शैली शुभ की संकल्पना को सार्वजनिक रैकिंग देने के लिए आधार देती है। सार्वजनिक रुप से सहभागी लक्ष्यों को पाने की कोशिश समुदाय की जीवन शैली को परिभाषित करती है। तटस्थता की आवश्यकता इस पर किसी तरह की कोई सीमा नहीं लगाती है। एक समुदाय राज्य लोगों को शुभ की उन संकल्पनाओं को अपनाने के लिए प्रोत्साहित कर सकता है, जो समुदाय के अनुरुप हों। वह शुभ की उन संकल्पनाओं को हतोत्साहित कर सकता है जिनका उनके साथ टकराव हो इसलिए एक समुदायवादी राज्य एक पूर्णवादी राज्य है, क्योंकि इसमें विभिन्न जीवन शैलियों के मूल्य की एक सार्वजनिक रैकिंग शामिल है।

आत्म –स्वामित्व के तर्क के अनुसार लोग अपने आप में साध्य होते है। लोगों के बीच नैतिक समानता को अभिव्यक्त करने के लिए कांट ने लोगों को अपने आप में साध्य मानने का सूत्र दिया था।

नॉजिक के अनुसार लोगों को अपने –आप में साध्य मानने का सूत्र आत्म –स्वामित्व को उत्पन्न करता है, तो वे स्वतंत्रतावाद के लिए एक मजबूत तर्क दे सकते हैं। समाज को निश्चित तौर पर स्वतंत्रता के अधिकारों की इज्जत करनी चाहिए। हमें सामाजिक साध्यों को अधिकारिक मानना चाहिए क्योंकि उदारवादी दृष्टिकोण आत्म के एक गलत विवरण पर आधारित है। उदारवादी दृष्टिकोण में,"आत्म अपने लक्ष्यों से पहले आता है"। हमें अपने जीवन की प्रकृति के बारे में अपने सबसे गहरी पूर्व–धारणाओं पर सवाल खड़ा करने का अधिकार भी है। माइकल सैण्डल तर्क देते है कि आत्म अपने साध्यों से पहले नहीं होता, बल्कि इनसे बनता है– हम "मैं" को मेरे लक्ष्यों से अलग नहीं कर सकते हैं। कम से कम आंशिक रुप से हमारा आत्म उन लक्ष्यों से बनता है जिनका हम चुनाव नहीं कर नहीं करते हैं, बल्कि जिन्हें हम किसी सहभागी सामाजिक संदर्भ में समाहित होने के कारण पाते है (सैण्डल 1982) इन्हें हम संघटित लक्ष्य कह सकते है। चूँकि हमारे पास में संघटित लक्ष्य है, इसलिए हमारी जिंदगी इन योजनाओं का चयन करने और इनकी समीक्षा करने के लिए जरुरी परिस्थितियों से ज्यादा अच्छी नहीं होगी। इसकी जगह हमारी जिंदगी सहभागी रुप से बनने वाले इन संघटित लक्ष्यों के बारे में जागरुकता लाने के लिए जरुरी परिस्थितियों के होने से ज्यादा अच्छी तरह से गुजरती हैं। सामान्य हित की राजनीति सहभागी रुप से बनने वाले संघटित लक्ष्यों को अभिव्यक्त करती है। यह हमें एक सामान्य हित के बारे में जानने में समर्थ बनाती है, जिसे हम अकेले नहीं जान सकते हैं (सैण्डल 1982:83)। इसके लिए सैण्डल के पास दो तर्क हैं। आत्म–बोध और समाहित–आत्म पहला तर्क इस तरह से हैः भारमुक्त–आत्म, यदि आत्म अपने लक्ष्यों से पहले आता है, तो हमें आत्म अवलोकन करते हुए अपने विशिष्ट लक्ष्यों के द्वारा एक भारयुक्त–आत्म को देखने में समर्थ होना चाहिए। सैण्डल मानते

है कि हम अपने आत्म को भारयुक्त रुप में नहीं देखते हैं। रॉल्स द्वारा आत्मा को, इसके लक्ष्यों से पहले माना जाता है।

पारस्परिक–लाभ के रुप में स्वतंत्रतावादः– स्वतंत्रतवाद के पारस्परिक लाभ सिद्धांत समझौतावादी संदर्भ आधारित माना जाता है और उदारवादी–समतावादी सिद्धांत भी इसी समझौतावादी संदर्भो में ही प्रस्तुत किये जाते हैं। रॉल्स के लिए समझौता यंत्र न्याय के हमारे कर्त्तव्य से जुड़ा हुआ है। हमारा यह स्वाभाविक कर्त्तव्य है कि हम दूसरे लोगों के साथ निष्पक्ष व्यवहार करें, क्योंकि वे अपने आप में वैध दावों को उत्पन्न करने वाले स्त्रोत हैं। नैतिक दृष्टिकोण से लोगों का महत्व है। ऐसा इसलिए नहीं है कि वे हमें नुकसान या फायदा पहुँचाते है। दरअसल ऐसा इसलिए है, क्योंकि वे अपने–आप में साध्य है (रॉल्स 1971:) इसलिए लोग समान महत्व के हकदार है। यह एक स्वाभाविक कर्त्तव्य है, क्योंकि यह सहमति या पारस्परिक–लाभ से निगमित नहीं होता है, बल्कि हर व्यक्ति इसका देनदार है। (रॉल्स 1971) समझौता–यंत्र हमें इस स्वाभाविक कर्त्तव्य की अंर्तवस्तु को तय करने में सहायता देता है, इसलिए ¬प्रत्येक पक्ष को दूसरों को "मुक्त और समान मानते हुए" उनकी जरुरत का ध्यान रखना चाहिए। यह नैतिक व्यक्तियों के रुप में मनुष्यों के बीच समानता का प्रतिनिधित्व करता है (रॉल्स 1971)। किसी व्यक्ति के कार्यो में प्राकृतिक रुप से कुछ भी "सही" या "गलत" नहीं है, जिनका उद्देश्य दूसरों को नुकसान पहुँचाना हो। मेरे द्वारा आपको नुकसान पहुँचाने में कुछ भी गलत नहीं है। लेकिन यदि अन्य सारे व्यक्ति मुझे नुकसान नहीं पहुँचा रहें है तो आपको नुकसान न पहुँचाकर ज्यादा अच्छी स्थिति में रहुँगा। दूसरों को चोट पहुँचाने के खिलाफ एक अभिसमय अपनाना पारस्परिक रुप से लाभदायक है। इससे हमें अब अपनी और अपनी संपत्ति सुरक्षा में संसाधन बर्बाद नहीं करना पड़ता है। यह हमें स्थायी सहयोग कायम करने में भी समर्थ बनता है। इस सहमति का उल्लंघन करना अल्पकालीन रुप से हमारे स्वहित को पूरा कर सकता है। लेकिन अल्पकालिक–हित के अनुसार कार्य करने से पारस्परिक सहयोग और नियंत्रण अस्थायी हो जाता है। इससे हमारे दीर्घकालिक हितो पर बुरा प्रभाव पड़ता है। यह हॉब्स द्वारा वर्णित "सबका सबके खिलाफ युद्ध" जैसी स्थिति की ओर ले जाता है। इस तरह दूसरों को चोट पहुँचाना अपने–आप में गलत नहीं है। लेकिन जो हमे गलत और अन्यायपूर्ण मानता है, उसे अपनाने से हर किसी को फायदा होता है।

पारस्परिक–लाभ सिद्धांतकार मोल–तोल की शक्ति में प्राकृतिक समानता की अवधारणा में विश्वास करते हैं। न्याय केवल वहीं तक मुमकिन है जहाँ तक लोग समान है। प्राकृतिक रुप से हर कोई खुद को उलपब्ध साधनों का उपयोग करने का हकदार है। केवल उसी स्थिति में नैतिक प्रतिबंधों का उदय होगा जब लोगों की शक्ति और उनकी असुरक्षा कमोबेश बराबर हो।

समुदायवाद एंव उदारवाद की तुलना में समुदाय के कई रुप है जिनमें दार्शनिक समुदायवाद, सांस्कृतिक समुदायवाद या राजनीतिक समुदायवाद वही स्वतंत्रतावाद में इच्छा– स्वतंत्रतावाद बाजार, स्वतंत्र व्यापार,

राज्य रहित समाज कर रहित अर्थव्यवस्था इत्यादि संकल्पनाओं को जोड़ता है। मुख्य रुप से समुदायवादी व्यक्तिवादी विचारधारा के विरुद्ध अपना तर्क रखते हैः–

1 पराभौतिक या सत्ता मीमांसात्मक आधार–इसके अनुसार विश्व में केवल व्यक्ति ही एक मात्र इकाई है। समुदायवादी अन्य कई सामाजिक दार्शनिकों की तरह संस्थाओं, संबंधों, अर्थ और सामूहिकता इत्यादि के महत्व को इंगित करते है, जिनको लघुकृत करके शून्य में परिणित नहीं किया जा सकता। उनका अस्तित्व स्वतंत्र, सार्वभौमिक एंव चिरकाल तक बना रहता है।

2 नैतिक दृष्टि से समुदायवादी यह मानते है कि व्यक्ति की परिभाषा एक सामाजिक व्यक्ति के रुप में होती है और उसको समाज या समुदाय के सदस्य के अलावा परिभाषित नहीं किया जा सकता तथा वे मूल्य जो मनुष्य को समाज या समुदाय से जोड़ते है उनका उदारवाद में महत्व नहीं है, जबकि वे किसी भी व्यक्ति को पूर्ण व्यक्ति बनाने के लिए आवश्यक मूल्य है जैसे विश्वास, एकता, परम्परा भाईचारा, पारस्परिकता इत्यादि।

3 प्रणाली विज्ञान संबंधी तर्क–समुदायवादी यह तर्क देते है कि नैतिकता और अन्य राजनीतिक सिद्धांतों को समाज में क्रियान्वित कराने के लिए इतना पर्याप्त नहीं है कि सार्वभौमिक सिद्धांतों को वास्तविक स्थितियों में क्रियान्वित किया जाए। आवश्यक यह कि जीवन से संबंधित जीवित मूल्यों को पुर्नपरिभाषित कर वास्तविकता में क्रियान्वित किया जाए, जिससे कि नैतिक सिद्धांतों को समुदाय, समाज और अन्य समूह अंगीकृत कर सकें।

समुदायवादी इस विचार का विरोध करते है कि व्यक्ति स्वायत है वहीं उदारवाद में व्यक्ति की अस्मिता और स्वतंत्रता को किन संगठनों या संस्थाओं से खतरा है और उसमें गांव, परिवार, धार्मिक संस्थाओं इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है और ऐसे कानून बनाए जाते है जिससे कि वे व्यक्ति की स्वतंत्रता और अस्मिता को नियंत्रित न कर सकें क्योंकि उदारवाद के अनुसार ऐसा करना आधुनिक समाज के निर्माण के लिए आवश्यक है। ये सभी संस्थाओं और संगठन जो व्यक्ति को नियंत्रित करते है उनको समाप्त करके एक केन्द्रीकृत सत्ता को स्वीकार किया जाता है जिसे हम राज्य मानते है। उदारवादियों की मानव संबंधी समझ भी परिपक्व नहीं है क्योंकि वह व्यक्तियों के आपस में निर्भरता के महत्व को नहीं समझते। जबकि शास्वत में व्यक्ति के व्यक्तित्व को बनाने में दूसरे व्यक्तियों और संगठनों की बहुत अधिक हिस्सेदारी होती है। व्यक्ति का निर्माण केवल व्यक्तिगत स्वार्थो की पूर्ति के आधार पर नहीं हो सकता, अपितू उसमें स्वैच्छिक संगठनों, प्रोफेशनल समूह, परिवारों, धार्मिक संस्थाओं इत्यादि का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

उदारवादी राजनीतिक परम्पराओं को स्थापित करने के लिए कुछ मूल्यों जैसे स्वतंत्रता, समानता, सत्ता, अधिकार इत्यादि को अधिक महत्व देते है और उसमें भी प्रमुखता स्थापित करते है जैसे स्वतंत्रता, समानता से पूर्व होगी। एशियाई समुदायवादी पश्चिम की स्वतंत्रता की अवधारणा को अराजकता पैदा करने वाली अवधारणा मानते है। उसके अनुसार आर्थिक विकास के लिए स्वतंत्रता की सीमितता आवश्यक है। समुदायवाद की कुछ समस्याएँ भी है जैसे यह अपनी प्रकृति से तानाशाही पूर्ण होते है

तथा वे व्यक्तिगत स्वतंत्रता और अस्मिता का दमन करके अपनी आज्ञा का पालन करवाते है। समुदायवाद के द्वारा परम्परागत समुदाय की मृतप्राय परम्पराओं को पुनजीवित करने का प्रयास किया जाता है, जो आज के आधुनिक समय में पूर्णतया असंगत है और इसलिए वह एक सामाजिक रुढ़िवाद का प्रतिनिधित्व करते है। एक तरफ जॉन रॉल्स मानता है कि न्याय का सिद्धांत सार्वभौमिक है और किसी भी समाज की मूल संरचना पर क्रियान्वित किया जाता सकता है। दूसरी ओर समुदायवादी मानते है कि न्याय के मापदंड विशेष समाजों की परम्पराओं और जीवन के स्वरुपों के आधार पर नियत होने चाहिए, जो विभिन्न समाजों की परम्पराओं और जीवन के स्वरुपों के आधार नियत होने चाहिए, जो विभिन्न समाजों में अलग–अलग प्रकार के हो सकते हैं। समुदायवादी यह विश्वास व्यक्त करते है कि राजनीतिक दर्शन को साझा आचरण और समाज की समझ को अधिक महत्व देना चाहिए। इसके लिए न्याय एंव अधिकारों को परम्परागत उदारवादी सिद्धांतों को संशोधित करने की आवश्यकता है।

इच्छास्वतंत्रतावाद की तीन मुख्य धाराएं है पहली धारा में उदारवादी परिपेक्ष्य के न्यूनतम हस्तक्षेप को स्वीकार किया जाता है जिसमें फ्रेडरिक हेयर (1960) मिल्टन फिडमैन (1962) इत्यादि को सम्मिलित करते है जो स्वतंत्र बाजार और सीमित सरकार के आदर्श की पुरजोर वकालत करते है और वह मानते है कि आधुनिक सरकारें लोक–कल्याण, शिक्षा और चिकित्सा के क्षेत्र में जो कार्य कर रहें है उससे बेहतर निजी क्षेत्र से हो सकता है। सरकार को एक न्यूनतम आवश्यक कार्य करने के लिए आवश्यक मानते है। इसे नरम इच्छा स्वतंत्रतावाद कहा जाता है दूसरी धारा अतिवादी है जिसे इच्छास्वतंत्रतावादी या व्यक्तिवादी अराजकतावाद माना जाता है और जिसे अराजक पूँजीवाद के नाम से भी संबोधित किया जाता है। इनका (मुरे एंव फिडमैन) दृष्टिकोण है कि राज्य का कोई भी कार्य आवश्यक कार्य नहीं है यहाँ तक कि पुलिस सुरक्षा और राष्ट्रीय सुरक्षा भी निजी फर्मो के द्वारा की जानी चाहिए। सीमित सरकार की अपेक्षा "सरकार नहीं" का समर्थन करना चाहिए। तीसरी धारा को न्यूनतम राज्य इच्छास्वतंत्रतावाद के नाम से पुकारा जाता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार सरकार का एक निश्चित कार्य है जो सीमित होते हुए भी महत्वपूर्ण है। राज्य का प्रमुख वैधिक कार्य उसके नागरिकों की स्वतंत्रता, जीवन एंव सम्पत्ति की रक्षा करना है। इसके लिए राज्य को पुलिस सुरक्षा, राष्ट्रीय सुरक्षा, न्यायालय, कानून और अन्य प्रशासनिक व्यवस्थाएँ करनी चाहिए। ऐसा कोई कार्य जो इन संस्थाओं के द्वारा नागरिको के जीवन, स्वतंत्रता और सम्पत्ति के अधिकारों की सुरक्षा के अलावा किया जाता है वह अवैध व अनैतिक है, क्योंकि ऐसा करना व्यक्तियों के अधिकारों का हनन करना है। इस धारा में आएन रेंड, लुडविन वोन मिसेल तथा राबर्ट नोजिक जैसे विद्वानों का दृष्टिकोण माना जाता है।

वितरणात्मक न्याय की अवधारणा को नोजिक दोषपूर्ण मानता है क्योंकि इससे लगता है कि कोई केन्द्रीय सत्ता है जो समाज में सम्पदा के वितरण का निर्णय करती है और उसे अपने नियमों के अनुसार न्यायपूर्ण मानते हुए विभाजित करती है। सम्पदा शून्य में उत्पन्न हुई है और वह इंतजार कर रही है कि उसका न्यायपूर्ण वितरण किस प्रकार किया जाए। लेकिन यथार्थ का विश्व अलग नियमों से चलता है। आर्थिक क्षेत्र में सम्पदा का निमार्ण बहुत से व्यक्तियों के मध्य में हजारों तरह के लेन–देन के संबंधों के

आधार पर होता है जिसमें केन्द्रीय सत्ता का कोई हस्तक्षेप संभव नहीं हैं। समाज की अर्थव्यवस्था इस प्रकार नहीं चलती। इसमें आदान–प्रदान लेन–देन स्वाभाविक रुप से स्वेच्छा से किए जाते है जो विवेकीकृत होते है और जिसमें हर व्यक्ति आदान–प्रदान करते समय अपने हितों का ध्यान रखता है और अपनी इच्छाओं को पूर्ण करना चाहता है। इसके लिए उसे किसी केन्द्रीय सत्ता के निर्देशन की आवश्यकता नहीं है। इस व्यवस्था में कुछ व्यक्तियों को या व्यक्तियों के समूह को अपने परिश्रम, भाग्य, योजना और चतुराई से अधिक सम्पत्ति अर्जित करने का अवसर मिलता है। इस कारण एक स्व इच्छा पर आधारित आदान–प्रदान की इस व्यवस्था में जो व्यक्ति जितनी संपत्ति अर्जित करता है वह उसका हकदार होता है।

प्रजातांत्रिक समुदायवादी दृष्टिकोण व्यक्तिगत मानवीय गरिमा एंव मानवीय अस्तित्व के सामाजिक आयाम, दोनों को मान्यता देता है। प्रजातांत्रिक समुदायवाद कुछ मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध है, जैसे

व्यक्ति की पावनता– ऐसा कुछ भी जो व्यक्ति पर अत्याचार करता है, प्रजातांत्रिक समुदायवाद के दर्शन के विरुद्ध है, तथापि व्यक्ति बाजार अथवा राज्य से नहीं अपितू उस समुदाय से जिसका वह सदस्य है। स्वस्थ, सशक्त एंव नैतिक रुप से प्रबल समाज की पूर्वा पेक्षा है। एकात्मकता–इसका अर्थ है कि परिवार व अन्य सामाजिक संस्थाओं के साथ संबध ही मनुष्य को वह बनाते है जो वह है।

अनुपूरक संबंद्धता– इसका अर्थ है विभिन्न प्रकार के सामाजिक समूहों, यथा परिवार, धर्मविज्ञानी समुदाय, सांस्कृतिक व धार्मिक समूह, व्यवसायिक समूह, राजनीतिक दल इत्यादि के प्रति वचनबद्धता। समुदाय एक सर्व सम्मिलनकारी लघु स्तरीय समग्र समूह नहीं है। कोई भी व्यक्ति एक साथ अनेक समुदायों का सदस्य हो सकता है और उसे होना भी चाहिए।

सहभागिता– इसका अर्थ है, सामाजिक कृत्यों में हिस्सेदारी यह अरस्तु की नागरिकता की धारणा से काफी समानता रखता है। अधिक से अधिक भागीदारी, व्यक्ति को विभिन्न समुदायों में उसकी सदस्यता के प्रति जागरुक बनाती है।

स्वतंत्रतावाद स्वतंत्रता के सिद्धांत पर आधारित है। किसी सिद्धांत के स्वतंत्रता के सिद्धांत पर आधारित होने का मतलब यह हैः एक अनियंत्रित बाजार में ज्यादा आजादी शामिल होती है, आजादी एक बुनियादी मूल्य है, इसलिए बाजार की नैतिक रुप से जरुरत है। यह पूंजीवाद की तरफदारी करने में सहायता करता है। स्वतंत्रता के कई रुपों को बताया जा सकता है– जैसे प्रयोजनमूलक स्वतंत्रता, समाज में आजादी की मात्रा की अधिक से अधिक बढ़ावा देना हमारा उद्देश्य होना चाहिए। यदि स्वतंत्रता सर्वोच्च मूल्य है तो इसे जितना ज्यादा मुमकिन हो, उतना ज्यादा क्यों नहीं रखना चाहिए। लोगों की कुर्बानी देकर शुभ को बढावा दिया जाए। स्वतंत्रतावादियों द्वारा समानता को खारिज किए जाने से इसे बढावा मिला है। हर व्यक्ति आजाद हो सकता है, इसलिए व्यक्ति को आजाद होना चाहिए।

पीटर जोन्स ने लिखा है कि असमान स्वतंत्रता की जगह समान स्वतंत्रता को वरीयता देना असमानता की जगह समानता को वरीयता देना है। यह गुलामी की जगह स्वतंत्रता को वरीयता देना नहीं है

(जोन्स 1982:233) इस प्रकार स्वतंत्रतावादी जनसंख्या में बढ़ोतरी के द्वारा आजादी की कुल मात्रा में बढ़ोतरी करने के विचार को खारिज करते है। स्वतंत्रतावादी जब तक हर व्यक्ति के लिए समान स्वतंत्रता के बारे में वचनबद्ध है, वे एक समानता–आधारित सिद्धांत को अपना रहे है।

तटस्थ स्वतंत्रता– हर व्यक्ति सबसे विस्तृत स्वतंत्रता का हकदार है। लेकिन शर्त यह है कि यह स्वतंत्रता इसी तरह की दूसरों की स्वतंत्रता से सुसंगत हो। यह सिद्धांत एक समतावादी सिद्धांत की सामान्य रुपरेखा के भीतर काम करता है, क्योंकि इसमें समान स्वतंत्रता को कुल स्वतंत्रता की अधिक मात्रा के लिए कुर्बान नहीं किया जा सकता है। इस दृष्टिकोण से आजादी और आजादी की अधिक से अधिक बढ़ोतरी में हमारा हित है। यह दृष्टिकोण विभिन्न स्वतंत्रताओं में निहित आजादी की मात्रा की तुलना में भी विश्वास नहीं करता है। विभिन्न स्वतंत्रताएं बहुत सारे अलग–अलग कारणों से विभिन्न हितों को बढ़ावा देती है। यह मानने का कोई कारण नहीं है कि हमारे लिए सबसे अधिक आजादी है। किसी विशिष्ट स्वतंत्रता का उतना ही मूल्य है, जितना आजादी उसमें शामिल है विशिष्ट स्वतंत्रताओं में हमारा हित आजादी में हमारे हितों से ही निकलता है। स्वतंत्रता के मूल्यों का फैसला करने के लिए उच्चतर या निम्नतर आजादी के बारे में फैसला किया जाए। विभिन्न स्वतंत्रताओं का मूल्य इसी से निकलता है। अधिकतम समान स्वतंत्रता का सिद्धांत एक विशिष्ट स्वतंत्रता की सुरक्षा के लिए तर्क देता हैः प्रत्येक व्यक्ति के हित का महत्व है और समान रुप से महत्व है, स्वतंत्रता की अधिकतम मात्रा में लोगों का हित हैं। इसलिए लोगों के पास अधिकतम मात्रा में आजादी होनी चाहिए, जो दूसरों की समान आजादी से सुसंगत हो।

निष्कर्ष रुप में समुदायवाद राष्ट्रीयता, भाषा, पहचान, संस्कृति, धर्म, इतिहास की जीवनशैली सभी व्यक्ति के लिए आवश्यक तत्व माने जाते है गुणात्मक दृष्टि से हो या व्यक्ति के विकास के लिए स्वतंत्रता का मूल्य अत्यधिक होना चाहिए। व्यक्तित्व विकास, राजनीतिक विकास सामाजिक मूल्यों के संघर्ष इत्यादि के लिए आवश्यक माने जाते है। पूँजीवादी विचार धारा के आधार पर व्यक्ति के आर्थिक स्वरुप को भी अधिक मूल्यवान मानना चाहिए।

Bibliography

1. Addis, Adeno (1992), *Individualism, Communitananism and the Rights of Ethenic Minontics* Notre Dame law Review, 67/3: 615-75
2. Aldershot, Aldershot. Delaney .C.F.. 1994 The Liberal. Communitarian Debate:
3. Avineri, Shlomo and De-shalit, Avner(eds) (1992) *Communitarianism and individualism* (Oxford Univesity Press, Oxford)
4. Bell, Daniel A (1993) *Communitananism and its critics* (Oxford University Press, Oxford.
5. Christodoulis, Emilios, 1998, Communitarianism and citizenship Ashgate,

6. Etzioni, Amitai (1993) The Spirit of Community: Rights Responsible and the communitarian Agenda (Crown Publishers, New York)
7. Frazer, Elizaberth (1999). The Problems of Communitarian Politics: Unity and Conflict (Oxford University Press Oxford)
8. Heywood, Andrew, *Political Ideologiles: An introduction,* Palgrave macmillian, New York, 2005
9. Howarth, Alan, *Anti-Libertarianism: Markets, Philosophy and Myth*, Routlege, London, 1994
10. Kymalicka, will '*Contemporary Political Theory*', OUP, New Delhi, 2008
11. Liberty and Community Values (Rowman and Littlefield Savagem M.D)
12. Normanbarri, *Contemporary Libertarianism in Philosophy and Politics* (Combrize University Press 1991) New York

21वीं सदी में भारत–अफगान संबंधों में चुनौतियां

मनु कुमार

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

हरियाणा, भारत

शोध आलेख सार

भारत व अफगानिस्तान दक्षिणी एशिया में स्थित दो पड़ोसी देश हैं, जो 'सार्क' (क्षेत्रिय संगठन) के माध्यम से मंच साझा कर रहे हैं। प्राचिन काल से ही दोनों देशों के मध्य मधुर संबंध रहे हैं, जो की यक्ष–कदा समय को छोड़कर अभी तक मधुर ही चल रहे हैं। 21 वीं सदी में भारत के सामने अफगान पर अपनी पकड़ बनाएं रखने में चुनौतियां आ रही है, अफगान में तालिबानी शासक मजबूती पकड़ रहें हैं और वो अफगानी सेना को कमजोर करने की कोशिश कर रहे हैं, ऐसे में भारत के सामने अपनी राष्ट्र हितो की पूर्ति हेतु, अफगानिस्तान को करोड़ो–अरबो की वित्तिय सहायता प्रदान की जा रही है। परंतु वर्तमान में सुरक्षा की दृष्टि से भी भारत को विकल्प खोजने की आवश्यकता है, जिससे आने वाले समय में भारत को समस्या का सामना न करना पड़े। प्रस्तुत शोध–पत्र में 21वीं सदी में भारत–अफगान संबंधो में आई चुनौतियों पर प्रकाश डाला गया हैं।

मूलशब्द– संबंध, प्रगाढ़, चुनौतियां, विकल्प, सहायता, समस्या, कुटनीति, विदेश नीति आदि।

शोध–पत्र

भूमिका :–

स्वतंत्र भारत ने शीत–युद्धो युग में गुटनिरपेक्षता की नीति को अपनाया जिसका समर्थन अफगान शासक जहीर–शाह द्वारा किया गया। इसके चलते भारत–अफगान रिश्ते प्रगाढ़ हुए तथा का कालांतर में क्षेत्रिय व वैश्विक मुद्दो पर दोनों देशों के मैत्रिपूर्ण संबंध उभर कर सामने आए। भारत और अफगान के मैत्रीपूर्ण संबंध 1973 में अफगान में राजतंत्र समाप्त होने व मोहम्मद दाऊद के नए प्रधानमंत्री बनने पर भी कायम रहे। भारत व अफगान के मध्य अरबों डॉलर की लागत वाले कई मेगा प्रोजेक्ट्स पूरे हुए हैं तथा कुछ पर वर्तमान में काम चल रहा है। परंतु समय–असमय होने वाली कुछ गतिविधियां दोनों देशों के संबंधों में चुनौतियां प्रस्तुत कर रही हैं। वस्तुतः भारत–अफगान दक्षिण एशिया के दो प्रमुख पड़ोसी देश हैं और प्राचीन काल से ही दोनों देशों में प्रगाढ़ संबंध रहे है। महाभारत काल में हस्तिनापुर (वर्तमान दिल्ली के राजा धृतराष्ट्र का विवाह आधार) (वर्तमान कंधान, अफगानिस्तान) की राजकुमारी गांधारी के साथ हुआ था। भारत की स्वंतत्रता प्राप्ति के बाद भी दोनों देशों के संबंध मधुर बने रहे।

21वीं सदी में भारत–अफगान संबंध :–

राजनीतिक भागीदारी परिषदः वर्ष 2011 में दोनों देशों के मध्य राजनीतिक भागीदारी परिषद का गठन हुआ। इस परिषद की द्वितीय बैठक सितम्बर, 2017 में भारतीय विदेश मंत्री सुषमा स्वराज और अफगान के विदेश मंत्री सलाहुद्दीन रब्बानी के बीच हुई। बैठक में अफगानिस्तान में शांति, लोकतंत्र, समृद्धी की स्थापना हेतु भारत ने सहयोग देने की बात कहीं। साथ ही अनेक क्षेत्रीय व वैश्विक मुद्दो पर भी विचार–विमर्श किया गया।

राजनीतिक व सुरक्षा परामर्श व भारत–अफगान संबंध :–

दोनों देशों ने अफगान में हो रही हिंसक व आतंकी घटनाओं पर चिंता व्यक्त की तथा आपसी सुंरक्षा सहयोग को मजबूत बनाने पर सहमति दर्शायी भारत ने आतंक वित्तीय संकट नशीली दवाओं के अवैध व्यापार के विरूद्ध संघर्ष पर अफगान को सहायता प्रदान करने पर सहमति प्रदान की साथ ही हिंसक घटनाओ को रोकने हेतु हर संभव सहायता देने की बात कही।

व्यापार–वाणिज्य व भारत–अफगान संबंध :–

21वीं सदी में दोनों देशो के मध्य व्यापार–वाणिज्य के संबंध भी मजबूत हुए हैं। जून 2017 में काबुल और कंधार के बीच नई दिल्ली के साथ एयर कार्गो कॉरीडोर की स्थापना की गई है। दोनों–देशों के मध्य क्षेत्रिय प्रेषण व व्यापार को अधिक बनाने की आवश्यकता पर बल दिया गया है। भारत द्वारा अफगानी नागरिको के लिए व्यापार वीजा में उदार नीति अपनाई गई है, दूसरी और दोनों देशों के मध्य बहुमूल्य रत्नों, कृषि उत्पादों, भोजन सामग्री के प्रत्यक्ष व्यापार पर भी सहमती बनी है। भारत व अफगानिस्तान के मध्य सितम्बर, 2017 में दो दिवसीय व्यापार विदेश प्रदर्शनी 27–29 सितम्बर हुई, जिसका आयोजन नई दिल्ली में हुआ, जिसके चलते दोनों देशों के व्यापारिक संबंध मजबूत हुए हैं।

अन्य मुद्दो पर भारत–अफगान संबंध :–

1. भारत ने सामजिक, आर्थिक, मानव संसाधन विकास हेतु अफगानिस्तान को दो बिलियन यूएस डॉलर की सहायता प्रदान की साथ ही उच्च प्रभाव वाली 116 समुदाय विकास भागीदारी परियोजनाओं के आरंभ करने पर दोनों देशों में सहमती बनी।
2. अफगानिस्तान के नानगरहर प्रांत के शरणर्थियों को लौटाने हेतु भारत ने कम लागत पर घरों का निर्माण करवाया।
3. परवान प्रांत में चारिकार शहर में जलपूर्ति संयंत्र, काबुल में जिप्सम बोर्ड विनिर्माण संयंत्र की स्थापना, 180 मेगावाट क्षमता वाले सुरोबी 2 जल विघु संयंत्र की स्थापना, मजार ए–शरीफ, में पॉलीटेक्नीक निर्माण आदि कार्यो हेतु भारत द्वारा सहायता प्रदान की गई है।

- आई. आई. सी. आर. छात्रवृत्ति स्कीम। अफगानी नागरिकों के लिए वर्ष 2022 तक बढ़ाने पर सहमति हुई।

- कंधार में अफगान राष्ट्रीय कृषि विज्ञान और प्रौघोगिकी विश्वविद्यालय की स्थापना में भारत द्वारा सहयोग प्रदान किया गया।

21 वीं सदी में भारत–अफगान संबंध में भारत के समक्ष चुनौतियां :–

भारत व अफगानिस्तान के संबंध मधुर होने के बावजूद भारत के समक्ष सुरक्षा संबंधि चुनौतियां कायम हैं। भारत ने अफगानिस्तान में अनेक परियोजनाओं का आरंभ किया लेकिन सुरक्षा मोर्चे पर भारत द्वारा अफगान को कोई सहायता प्रदान नहीं की गई है। अफगानिस्तान की सेना के कमजोर होने पर अफगान में तालिबानी शासक प्रभावी होने का डर भारत के लिए अभी भी बना हुआ है। तालिबानी शासक की स्थापना से भारत द्वारा वित्तपोषित विकास योजनाएं भी बेकार हो जांएगी। दूसरा यदि अमेरिकी सेना अफगानिस्तान से वापस चली जाती हैं, तो भी वहां तालिबानी प्रभुत्व कायम होने की आशंका है, जो कि भारत के लिए चुनौतीपूर्ण होगा।

भारत के समक्ष विकल्प :–

भारतीय विदेश नीति के अनुसार अफगान में उपस्थित तालिबानी आतंक सिर्फ भारत ही नहीं अपितु, सम्पूर्ण विश्व हेतु खतरा है। इसलिए भारत अफगानिस्तान में शांति स्थापित करने व लोकतंत्र की स्थापना हेतु प्रयासरत है। भारत कूटनीतिक स्तर पर भी बहा के शासनाध्यक्षों से संपर्क स्थापित कर रहा हैं। अफगान राष्ट्रपति हामिदकर जई द्वारा रायनीना डायलॉग को संबंधित करते हुए यह कहना की रूस व अमेरिका की अगुवाई में आरंभ की गई शांति वार्ता में भारत सक्रिय भूमिका निभा रहा है जो इसका वर्तमान उदाहरण है। भारत तालिबान के साथ भी बात–चीत के प्रयास कर रहा है। नवंम्बर 2018 में दो रिटायर्ड भारतीय राजनयिक द्वारा मास्को में तालिबान से बात–चीत करने जाना इसका उदाहरण हैं। पाकिस्तान द्वारा अफगान में भारत की भूमिका कम करने की कोशिश में भारत पाक से उलझने की बजाए अन्य क्षेत्रिय संगठनो यथा IORIT, BBPN, BIMSTEC पर अपना ध्यान केन्द्रित कर रहा है।

निष्कर्ष :–

वर्तमान दौर को देखते हुए भारत को अपने राष्ट्र हितों को सर्वोपरी रखना होगा। इसके चलते भारत को अफगान सुरक्षा पर चीन व रूस से वार्ता करनी चाहिए, तथा यू॰ एन॰ ओ॰ के सहयोग से अफगान में अपनी सेना भेजने पर भी भारत को विचार करना चाहिए ताकि अफगानिस्तान में शांति बहाली की जा सके। भारत को वहाँ के नृजातिय समूहों से भी बातचीत को तैयार रहना चाहिए। तालिबान से भी भारत को अपने संबंध बेहतर बनाने का विकल्प ढूंढना चाहिए, ताकि यदि वहां तालिबान सरकार स्थापित होती है, तो भारत की सुरक्षा को खतरा न हो। भारत को अपना स्थाई लक्ष्य अफगान में अपनी पकड़ बनाएं रखना, जिसके लिए भारत द्वारा करोड़ो अरबों रूपए खर्च किए जा रहे हैं, प्राप्त करने हेतु यदि भारत को अपनी कुटनीति में बदलाव करना पड़े तो भारत को तत्पर रहना चाहिए।

संदर्भ सूची

1. अविनाश पालिवाल, माई एनिमिज एनिमि, हार्पर कोलीन्स पब्लिशर्स, नोएडा, भारत, 2017.
2. बी.एल. फाड़िया, अंतर्राष्टिय राजनीति, साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा, 2014.
3. राजेश मिश्रा, भारतीय विदेश नीति भूमण्डलीकरण के दौर में, ओरिंयट ब्लैकस्वान पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2018
4. पुष्पेश पंत, 21वीं सदी में अंतर्राष्ट्रिय संबंध, मैग्राहिल ऐजुकेशन पब्लिशर्स, चेन्नई, 2019.
5. राजश्री चक्रवर्ती, अफगान–शांति समझौता, *वर्ल्ड फोकस*, अक्तूबर, 2019, अंक–91.
6. http://eoi.gov.in/kabul/
7. http://en.m.wikipedia.org/wiki/afganistan/e2%80%93india-relation

नागरिकता संशोधन अधिनियम : एक अवलोकन

नवीन कुमार

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

हरियाणा, भारत

शोध आलेख सार

भारत एक विविधतापूर्ण देश हैं जिसमें सभी सम्प्रदायों के व्यक्तियों का समावेश हैं, इसलिए भारत में सभी सम्प्रदायों को नागरिकता अधिनियम 1955 के तहत नागरिकता भी प्रदान की गई हैं। लेकिन पिछले कुछ वर्षों से राजनीति में वोट बैंक के लिए प्रवासियों को बढ़ावा देना विविध समस्याओं को उत्पन्न करने में अपने पैरा पसारता नजर आने लगा हैं और यही समस्या आने वाले समय में गंभीर हो सकती है ऐसा विद्वानों का मानना हैं। यही कारण है कि लम्बे समय से चले आ रहे भारतीय नागरिक अधिनियम 1955 में संशोधन करना आवश्यक हो गया हैं ताकि बढती हुई आबादी और संसाधनों की घटती दर को संतुलित किया जा सके, इसलिए नागरिकता अधिनियम में संशोधन किया गया। इस अधिनियम के लाने के पीछे क्या मंशा थी और कितनी समस्याओं से निजात पाया गया तथा इससे भारतीय नागरिकों व प्रवासियों पर क्या प्रभाव पड़ा ? इस शोध पत्र के माध्यम से नागरिकता अधिनियम के बारे में जानकारी एकत्रित करने का प्रयास किया गया है।

मूलशब्द– अपलसंख्यक, शरणार्थी, अधिनियम, सवैंधानिक, दूरदर्शिता, प्रतिबद्धता।

शोध–पत्र

परिचय :

वस्तुतः नागरिकता अधिनियम 1955 में संशोधन करने की आवश्यकता ने ही नागरिकता संशोधन विधेयक 2019 की नींव रखी और यह विधेयक राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविंद के 12 दिसंबर 2019 को मंजूरी देने पर अधिनियम भी बन गया है इस विधेयक को पहले लोकसभा में 9 दिसंबर व 11 दिसंबर को राज्यसभा में पास किया गया था। यह विधेयक विशेषकर धार्मिक प्रताड़ना के शिकार हुए लोगों को न्याय दिलाने का एक सराहनीय प्रयास है। इस संशोधन अधिनियम 2019 में विशेषकर तीन देशों से आए गैर–मुस्लिम समुदायों को नागरिकता प्रदान करने की बात कही गयी है, विशेषकर अफगानिस्तान, बांग्लादेश और पाकिस्तान से आए गैर–मुस्लिम, जिनमें हिंदू, सिख, जैन, बौद्ध, पारसी, ईसाई समुदाय के लोग है। सरकार का मानना है कि ये समुदाय धार्मिक प्रताड़ना के शिकार हुए और इनको नागरिकता प्रदान कराके इन समुदायों को न्याय दिलाने का कार्य हुआ है। इस अधिनियम में 31 दिसंबर

2014 की एक तारीख का वर्णन बौद्ध, जैन, पारसी और ईसाई इनमें से किसी समुदाय के लोग ऊपर वर्णित दिनांक तक भारत में प्रवेश कर लिया है तो उन सभी को नागरिकता अधिनियम 2019 के तहत भारत की नागरिकता प्रदान कर दी जाएगी।

इस संशोधन नागरिकता अधिनियम 2019 को लाने की आवश्यकता क्यों पड़ी इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा गया है कि पिछले कई दशकों से विशेषकर बांग्लादेश, पाकिस्तान, अफगानिस्तान जैसे बहुल मुस्लिम देशों में गैर–मुस्लिम समुदायों को प्रताड़ित किया जा रहा है और इन समुदायों पर विशेषकर हिन्दु समुदाय पर दबाव बनाकर धर्म परिवर्तन भी करवाया जा रहा है, जिससे हिन्दु, सिख, ईसाई, बौद्ध, जैन, पारसी समुदाय के लोगों को धार्मिक प्रताड़ना का शिकार बनाया जा रहा है। इस प्रकार की घटना मानवाधिकारों कें विरूद्ध तो हैं ही बल्कि राजनीतिक तुष्टिकरण को भी बढ़ावा देने में आग में घी का काम करती है। पाकिस्तान की नेशनल असेम्बली के अनुसार प्रत्येक वर्ष 5000 के लगभग हिन्दू, भारत में आकर शरण ले रहे हैं। अगर हम आंकडो की बात करें तो यह आंकडे सिर्फ पाकिस्तान के हिन्दू समुदाय विशेष से हैं। यह संख्या बांग्लादेश, पाकिस्तान, अफगानिस्तान में अन्य समुदायों के धार्मिक उत्पीड़न की बात करे तो बढकर बहुत अधिक हो जाएगी। इन समुदाय को नागरिकता 'प्राकृतिकरण' के माध्यम से पात्र बनाया जाएगा। नागरिकता अधिनियम 1955 की उस शर्त में भी परिवर्तन किया गया है जिसमें समय सीमा 11 वर्ष थी अब उसको घटाकर 5 वर्ष कर दिया गया है। इसी अवधि से अब निवास की प्रमाणिता सिद्ध करनी होगी।

इस नागरिकता संशोधन अधिनियम 2019 में हिन्दू, बौद्ध, जैन, सिख, ईसाई, पारसी समुदाय को भारत में शरण दी जाएगी। माननीय गृह मन्त्री अमित शाह जी ने संसद में भाषण देते हुए इस अधिनियम की बातों को संसद पटल पर रखा उन्हीं में से कुछ मुख्य बातों को निम्न बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है :–

- जो लोग धार्मिक प्रताड़ना के शिकार हुए हैं और जिन पर वहाँ संकट गहराया है यह अधिनियम उन सभी समुदाय के लोगों को राहत देगा जो बांग्लादेश पाकिस्तान व अफगानिस्तान में अल्संख्यक बने हुए हैं।
- इस अधिनियम से भारत में अल्पसंख्यक समुदाय विशेषकर मुस्लिम समुदाय को कोई हानि नहीं होगी।
- यह अधिनियम हिन्दू, सिख, ईसाई, बौद्ध, जैन, पारसी समुदाय जो पाकिस्तान, अफगानिस्तान, बांग्लादेश जैसे मुस्लिम बहुल देश में अल्पसंख्यक हैं और जिनका जबरन धर्म परिवर्तन किया जा रहा है, उनको न्याय दिलाने का काम करेगा।
- माननीय गृहमंत्री अमितशाह ने अल्पसंख्यक समुदाय जो भारत में मुस्लिम सम्प्रदाय हैं, के बारे में इस भ्रांति को भी दूर किया कि यह बिल अल्पसंख्यक के विरूद्ध है। गृहमंत्री जी ने आश्वासन

दिलाया कि यह अधिनियम नागरिकता प्रदान करने के लिए है, किसी की नागरिकता छीनने के लिए नहीं है।

- नागरिक संशोधन अधिनियम 2019 उत्तर–पूर्व के राज्यों में लागू नहीं होगा क्योंकि इस अधिनियम में यह कहा गया है कि उत्तर पूर्व के राज्यों में लोगों के जीवन स्तर को देखते हुए उनके अधिकार, भाषा, संस्कृति और उनकी सामाजिक पहचान सुरक्षित रखने के लिए ही यह कदम उठाया गया है। क्योंकि इन राज्यों में जनजातीय की अधिकता है जिससे इस अधिनियम को वहाँ लागू न करने से उनके अधिकारों का सरंक्षण हो सके। संविधान में उल्लेखित छठी अनुसूचि में असम, मेघालय, त्रिपुरा, मिजोरम और अब मणिपुर शामिल करके इसे नोटिफाई भी किया जा चुका है।
- नागरिक संशोधन विधेयक क्यों आवश्यक था, इस प्रश्न का उत्तर हमें भारत–पाकिस्तान के विभाजन जो धर्म के आधार पर हुआ था, से ही मिल जाता है। पाकिस्तान ने अपने आपको एक मुस्लिम देश घोषित कर दिया और गैर–मुस्लिम समुदाय जिसमें हिन्दू, सिख, ईसाई, बौद्ध, जैन एवं पारसी जैसे अल्पसंख्यक समुदाय पर धर्म परिवर्तन व उनका शोषण करने में मानवाधिकारों का हनन करने लग गया। परिणामस्वरूप वहाँ पर हिन्दू आबादी घट कर बिल्कुल हासिए पर आ गई। जब इस तरह की छलाए ज्यादा विस्तृत स्तर पर होने लगी तो भारत सरकार ने महसूस किया कि पाकिस्तान नेहरू–लियाकत जैसी ऐतिहासिक संधि की पूर्णरूपेण अवहेलना कर रहा है, जिसमें स्पष्ट तौर पर यह सम्मिलित था अगर पाकिस्तान, अल्संख्यक समुदाय की सुरक्षा के दायित्व को अच्छे से नहीं निभाता है तो भारत उनके जीवन और स्वतंत्रता की रक्षा करेगा। इसलिए भारत सरकार ने पाकिस्तान, अफगानिस्तान, बांग्लादेश जैसे देशों में जहाँ हिन्दू अल्पसंख्यक है, के अधिकारों व उनको शरण देने की पहल की है। यह अधिनियम कितना महत्वपूर्ण है, इसका अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि हिन्दू, सिख, ईसाई, पारसी बौद्ध व जैन जैसे समुदायों को उत्पीड़न होने से ही नहीं बचाया गया है बल्कि भारत में आए इन शरणार्थियों को नागरिकता का प्रावधान देकर मानवीय समुदाय को जीने का एक विकल्प भी प्रस्तुत किया है, जिससे वे प्रवासी न रहकर एक अखंड भारत का एक अभिन्न अंग बन सके और उनको सच्चा न्याय मिल सके।

निष्कर्षः

अतः आज अधिकांश बुद्धिजीवी व राजनीतिक विश्लेषकों ने एकमत होकर यह स्पष्ट की है कि यह नया नागरिकता संशोधन अधिनियम 2019 भारत सरकार का एक ऐसा कदम है जिसमें अल्पसंख्यकों को एक जीने का आधार दिया गया हैं इतना ही नहीं मुस्लिम बहुल आबादी वाले देशों को इस बात का संदेश भी दे दिया गया हैं कि अल्पसंख्यक समुहों पर किए गए अत्याचार व जबरदस्ती धर्म परिवर्तन कराना न केवल अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार उचित है बल्कि इसमें मानवाधिकारों का

उल्लघंन भी है। लेकिन भारत सरकार के इस कदम की आलोचना भी विस्तृत स्तर पर होना बुद्धिजीवियों का ध्यान अधिनियम पर खींचने का लगातार काम कर रही है। लगातार धरने प्रदर्शन करके इस अधिनियम को लागू करने के निर्णय को चुनौती दी जा रही है। ऐसा नहीं है कि धरने प्रदर्शन व उपद्रवी आंदोलनकारियों से इस अधिनियम की गुणवत्ता के नजर अंदाज किया जा सकता है। हालांकि भारत एक लोकतांत्रिक देश होने के कारण जनता द्वारा किसी भी अधिनियम का समर्पण व विरोध होना स्वाभाविक ही है। लेकिन भारत सरकार को भी इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उनके द्वारा बनाया गया कोई भी अधिनियम अल्पसंख्यक या बहुसंख्यक किसी एक का पूर्णरूपेण समर्थन न हो और अपने इस अधिनियम को व्यवहार में लाने के लिए ये भी ध्यान रखना होगा कि समाज में कोई भी सम्प्रदाय मुख्य धारा से अछूता न रह पाए।

सन्दर्भ :

1. मुखर्जी स्मृति न्यास ''कमल संदेश'' नई दिल्ली।
2. http://havbharattimes.indiatimes.com-20Dec2019
3. http://aajtak.intoday.in-18Dec.2019
4. http://hi.m.wikipedia.org-12Dec.2019
5. http://hindi.news18.com-18Dec.2019
6. http://www.livehindustan.com-20Dec.2019
7. http://www.amerujala.com-11Jan.2020

राष्ट्रीय जागरण में स्वामी दयानन्द की भूमिका

डॉ.जगबीर सिंह

सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग

राजकीय कॉलेज जुलाना, जींद

हरियाणा, भारत

शोध आलेख सार

चूंकि स्वामी दयानन्द एक समाज सुधारक होने के साथ–साथ एक राष्ट्रवादी भी थे और उन्होंने 1857 की क्रांति के परिदृश्य को अपनी आंखों से देखा था। इसलिए स्वामी जी ने तत्कालीन हिन्दू समाज की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक दशाओं को बड़ी निकट दृष्टि से पहचानकर ही स्वामी जी ने अपनी शिक्षाओं और सम्पूर्ण आर्यसमाज का लक्ष्य निर्धारित किया। उन्होंने चारों और अनैतिकता, कायरता, वैदिक पतन और सामाजिक अधोगति को देखा। हिन्दू समाज की इस दुर्दशा ने उनके विचारों को क्रान्ति की ऐसी चिंगारी दी कि वे हिन्दू समाज को सुधारने, विदेशी तत्वों के चंगुल से उसे बचाने और हिन्दू सामाजिक संगठन के विविध अंगों के बीच सांमजस्य स्थापित करने के मार्ग पर दृढतापूर्वक चल पड़े। स्वामी दयानन्द को इस बात पर गहरा धक्का लगा कि अंग्रेजी शिक्षा और ईसाई मिशनरियो के प्रयत्नों से बड़ी संख्या में हिन्दू या तो नास्तिक होते जा रहे थे या फिर ईसाई बनते जा रहे थे। अतः हिन्दुओं को पुनः संगठित करने, हिन्दु धर्म की रक्षा करने, अहिन्दू बने लोगों को पुनः हिन्दू धर्म में लाने तथा हिन्दू समाज में एकता उत्पन्न करने के पवित्र कार्य में उन्होंने मृत्यु पर्यन्त कोई शिथिलता नहीं आने दी। प्रस्तुत शोध पत्र में स्वामी दयानन्द की राष्ट्रीय जागरण में भूमिका पर प्रकाश डाला गया है।

मूलशब्द– राष्ट्रीय जागरण, अंग्रेजी शिक्षा, सामाजिक सुधार, शुद्धि आन्दोलन।

शोध–पत्र

भूमिका– स्वामी दयानन्द एक उच्च कोटि के राष्ट्रीय व्यक्तित्व के स्वामी थे। उन्होंने सर्वप्रथम **'स्वराज्य'** शब्द का प्रयोग किया जो आगे चलकर भारत के राष्ट्रवादी नेताओं के लिए प्रेरणा का स्रोत बना। उन्होंने समस्त भारत की सामाजिक कुरीतियों पर सीधा प्रहार किया और वैदिक धर्म को सत्य व सार्वदेशिक बताया। उन्होंने हिन्दी भाषा को देश के नवजागरण का आधार बनाया। उन्होंने स्वभाषा, स्वधर्म, स्वदेशी व स्वाभिमान को राष्ट्रवाद का आधार बनाकर भारत के स्वाधीनता आन्दोलन में अपना अमूल्य योगदान दिया। वस्तुतः स्वामी दयानन्द सरस्वती का चिन्तन तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक व राष्ट्रीय भारतीय समस्याओं से जुड़ा हुआ है, वहीं दूसरी तरफ उनका दर्शन सैद्धान्तिक होने के साथ–साथ पूरी तरह व्यावहारिक भी है। इस संदर्भ में उन्होंने भारतीय संस्कृति के

नवगठन में आध्यात्मिकता व वैज्ञानिता का अद्भुत समावेश किया। स्वामी जी की दृष्टि में आध्यात्मिक विकास वैज्ञानिक उन्नति एवं सामाजिक उत्थान के लिए आवश्यक था। हालांकि स्वामी को कुछ लोग पुराणपंथी कहते थे लेकिन वास्तविकता यह है कि पूर्व व पश्चिम का जितना सक्रिय समन्वय स्वामी जी के विचारों में है उतना कहीं और मिलना कठिन है। फिर भी इन विचारों का स्वरूप शुद्ध भारतीय है। वास्तव में स्वामी जी एक ऐसे राष्ट्रवादी थे जिन्होंने सबसे पहले अपने ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' में 'स्वराज्य' का आदर्श प्रस्तुत किया जिसने भारतीय राष्ट्रवाद के पुनर्जागरण में सहायता व देशवासियों को प्रेरणा दी। इसके अलावा उन्होंने हिन्दु पुनरूत्थान पर भी बल दिया, क्योंकि भारत में शताब्दियों से स्थापित विदेशी शासन के कारण भारत के सांस्कृतिक भूपतिओं का पतन हो चुका था। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने यह अनुभव किया कि किसी भी राष्ट्र का निर्माण विदेशी आधार पर होना संभव नहीं है। अतः उन्होंने हिन्दू पुनरूत्थान पर बल दिया, जिससे भारतीयों में राष्ट्रीयता का संचार हो सके। स्वामी की दृष्टि उपनिषदों से भी परे हो गई इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए 'वेदों की ओर लौटो' नारा दिया। मार्टिन लूथर का नारा, 'बाईबल की ओर लौटो' भारतीय संदर्भ में 'वेदों की ओर लौटो' बन गया। स्वामी जी ने हिन्दुओं को उनकी प्राचीन गौरवमयी संस्कृति का पाठ पढाया और अपने सुषुप्त स्वामिमान को पुनः जागृत करने पर बल दिया। ब्रिटिश शासन के लिए जिस काल में अपने धर्म, साहित्य व संस्कृति तथा अपने गौरवमय इतिहास के प्रति भारतीय लोगों में दीन भावनाएं घर कर गई थी और वे ब्रिटिश शासन को ही वरदान समझने लगे थे, उस समय स्वामी दयानंद के इस प्रचार ने भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में संजीवनी का कार्य किया।

अधिकांश इतिहासकार और विद्वान इस बात से सहमत हैं कि स्वामी दयानन्द का क्षेत्र राजनीतिक नहीं था परन्तु उन्होंने भांप लिया था कि 1857 की क्रांति की असफलता का प्रमुख कारण देशी रियासतों की तटस्थता रही है। अतः उन्होंने देशी रियासतों के राजाओं में स्वदेशाभिमान जगाने के लिए संपूर्ण भारत में क्रान्ति करनी प्रारंभ की और सामाजिक राजनीतिक चेतना जगाने का कार्य किया। स्वदेशाभिमान जगाने वाले इस महान् संत की गतिविधियों से ब्रिटिश सरकार परेशान थी। भारतीय राष्ट्रवाद को संबल बनाने के लिए स्वामी जी ने सामाजिक धार्मिक व राजनीतिक पुनरुत्थान की नींव रखी। इनके साथ–साथ स्वामी जी ने भारतीयों को निर्भीकता का पाठ पढ़ाकर भारतीयों को विदेशी प्रभुत्त से टक्कर लेने की प्रेरणा दी। उन्होंने स्पष्ट किया कि निर्भीकता ही अपने राजनीतिक स्वरूप में ऐसी शक्ति है जो विदेशी साम्राज्यवाद का डटकर मुकाबला कर सकती है। उन्होंने प्रेरणा दी कि भारतवासी अपना आत्मबल बढ़ाएं और निर्भीक होकर एकजुटता के साथ ब्रिटिश शासन के विरुद्ध खड़े हों। स्वामी जी की भावना राष्ट्रीय स्वतंत्रता व राष्ट्रीय स्वाभिमान के लिए तड़प रही थी, इसीलिए उन्होंने संपूर्ण देश की छोटी–छोटी देशी रियासतों को जागृत करने का कार्य प्रारंभ किया। उनके प्रयासों से अल्प समय में ही बड़ौदा, उदयपुर, जोधपुर, इंद्रौर, कोल्हापुर तथा शाहपुरा राज्य के नरेशों के जीवन में उनके उपदेशों से जो सुधार हुआ, उसका हितकर परिणाम उनके व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक जीवन में प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर होने लगा और उनके राज्यों की व्यवस्था में भी सुधार आना प्रारंभ हो गया।

युगद्रष्टा स्वामी दयानन्द ने भारतीय जनता के लिए न केवल राष्ट्र धर्म अपितु राजधर्म अर्थात् भारतीय जनता की संप्रभुता का भी स्पष्ट शब्दों में निर्धारण कर दिया, क्योंकि उन्होंने 'वेदों की ओर लौटो' के नारे के साथ–साथ 'आर्यवर्त आर्यों के लिए' का नारा भी बुलंद किया इस प्रकार भारत वर्ष के लिए केवल भारतीयों का शासन का निर्माण करना स्वामी जी के राष्ट्रवादी वर्चस्व का मुख्य लक्ष्य रहा। अपने समय में राष्ट्रीय जागृति के लिए उन्होंने गुरूकुल शिक्षा प्रणाली पर बल दिया और शिक्षा का माध्यम हिन्दी को बनाने की प्रेरणा संपूर्ण भारत में फैलायी। जिस प्रकार पुनर्जागरण के समय अपनी जर्मनी और फ्रांसीसी भाषाओं के विकास से यूरोप में राष्ट्रवाद के उत्थान को प्रेरणा दी, उसी प्रकार आर्य समाज के हिन्दी प्रचार से भारतीय राष्ट्रवाद को यथेष्ट उत्तेजना मिली। जिस प्रकार फ्रांस की राज्य क्रांति ने यूनान और रोम के गणतंत्रवाद को प्रेरणा दी उसी प्रकार आर्य समाज के 'वेदवाद' की प्रेरणा ने लोगों में आत्मसम्मान, देशप्रेम, स्वतंत्रता एवं अपनी संस्कृति के प्रति गौरव का भाव भर दिया। इसीलिए डा. विजेन्द्र सिंह ने स्वामी जी के बारे में लिखा , 'आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती भारत में आध्यात्मिक जागृति के मार्टिन लूथर थे। जिस प्रकार लूथर ने शाश्वत सत्य के सहारे बाईबल के सिद्धांतों का समर्थन किया, उसी प्रकार स्वामी दयानंद ने सनातन सत्य को वेद ज्ञान के अनुसार जीवन में उतारकेवल यही नहीं अपितु, नव जागरण के अग्रदूत स्वामी दयानंद ने अपने ग्रंथों लेखों, भाषणों एवं चर्चाओं से समाज को पुनर्जीवन देकर देशाद्धार का अभूतपूर्व कार्य किया। उनका आर्य समाज आंदोलन भारतीय नवजागरण में मील का पत्थर साबित हुआ।

स्वामी दयानन्द एक ही साथ निराधार धार्मिक अंधविश्वासों के विरोधी और मानव एकता के प्रचारक थे। वर्तमान समय के लोकतांत्रिक आदर्शों यथाः स्वतंत्रता, समानता व न्याय आदि को स्वामी दयानंद ने वर्षों पहले पहचानकर उनके लिए आंदोलन प्रारंभ कर दिया था। इस संदर्भ में उनकी तुलना ठीक प्लेटो से की जा सकती है क्योंकि प्लेटो के दर्शन का लक्ष्य एक आदर्श राज्य की स्थापना करना था। उसी तरह स्वामी दयानंद द्वारा संचालित आर्य समाज के सुधार आयोजन का लक्ष्य भी एक विकसित, आत्मनिर्भर व स्वतंत्र तथा शक्तिशाली भारत के निर्माण का था। उस समय राजनीतिक पराधीनता की बेड़ियों ने पूरी तरह भारतवर्ष को जकड़ लिया और इन्ही बेड़ियों के कष्ट ने स्वामी दयानन्द के राष्ट्रवादी विचारों को जन्म दिया। उस समय न केवल राजनीतिक रूप से, बल्कि सामाजिक रूप से भी भारतीय समाज और अधिक पथभ्रष्ट व पद दलित हो चुका था। समाज में फैला हुआ जातिवाद, अंधविश्वास व अनेक सामाजिक कुप्रथाएं न केवल समाज को खोखला कर रही थी, बल्कि समाज को इन कुप्रथाओं ने विकास की बजाए पिछड़ा हुआ बना दिया था। सम्पूर्ण समाज सदाचार व सच्चाई से दूर हो चुका था। भारतीय समाज की जाति व्यवस्था ने तो सम्पूर्ण समाज के टुकड़े–टुकड़े कर दिये थे, जिनको पुनः जोड़ना लगभग असंभव सा हो गया था। उस समय समस्त भारत में धार्मिक परिस्थितियां भी पथभ्रष्ट हो चुकी थी व प्राचीन वैदिक धर्म अनेक सम्प्रदायों में विभाजित होकर मत–मतान्तरों में बंट गया था। समाज को धर्म के नाम पर अंधविश्वासों ने जकड़कर संकुचित बना दिया गया था। साम्प्रदायिक व मजहबी फूट ने समाज को तोड़कर राष्ट्र की एकता को भी खण्डित कर दिया

था। अब क्योंकि समाज राजनीतिक पराधीनता, सामाजिक पिछड़ेपन व धार्मिक फूट व अंधविश्वासों की जकड़ में आ चुका था तो ऐसी परिस्थितियों में भारत का आर्थिक विकास भी पूरी तरह रूक गया था। ब्रिटिश साम्राज्य के फलस्वरूप भारत रूपी सोने की चिड़िया मिट्टी की चिड़िया बनकर रह गई थी। हालांकि यहां यह वर्णनीय है कि 17वीं सदी तक भारत पाश्चात्य देशों से आर्थिक क्षेत्र में किसी भी प्रकार से पीछे नहीं था, लेकिन भारत की यह सम्पन्न आर्थिक दशा 19वीं शताब्दी तक पूरी तरह चौपट हो चुकी थी और चारों तरफ गरीबी, भूखमरी, व दयनीय आर्थिक दशा का आलम था। स्वामी दयानन्द ने ऐसी आर्थिक दशा को निकट से देखा था और भारत की दरिद्रता दूर करने का उनकी दृष्टि से मुख्य उपाय था कि भारतीय भी विज्ञान व शिल्प का उपयोग करके अधिक से अधिक आर्थिक उत्पादन करें ताकि पश्चिमी अर्थव्यवस्था का मुकाबला किया जा सके। लेकिन स्वामी दयानन्द की दृष्टि में अंग्रेजी साम्राज्य से मुक्ति पाकर ही भारत का चंहुमुखी विकास संभव था और उनकी यही विचारधारा उनके राष्ट्रवादी विचारों की आधारशिला बनी। उपर्युक्त सभी परिस्थितियों को स्वामी दयानन्द ने बड़ी निकटता से देखा। अतः उन्होंने गिरती हुई भारतीय राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक परिस्थितियों को पुनः पटरी पर लाने के लिए समाज सुधारों की ऐसी क्रान्ति प्रारम्भ की जिसने सुषुप्त भारतीय समाज व राष्ट्र को पुनः जागृत किया। स्वामी दयानन्द के राष्ट्रवादी विचार हमारे राष्ट्र के पुनरूत्थान में सहायक सिद्ध हुए।

अतः भारतीय पुनर्जागरण के उन्नायक, आधुनिक युग के क्रान्तिदर्शी ऋषि और अद्वितीय समाज सुधारक महर्षि दयानन्द का प्राचीन भारतीय सामाजिक व राजनीतिक दर्शन में अति महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि 19वीं शताब्दी के बिखरे हुये व पथभ्रष्ट समाज को पुनः जागृत करने में उनके विचार व शिक्षाएं पूरी तरह सहायक सिद्ध हुई। उनकी विचारधारा व राष्ट्रवादी चिन्तन ने न केवल बिखरे हुये भारतीय समाज को एक सूत्र में पिरोया। बल्कि भारतीय राजनीतिक व राष्ट्रवादी भावनाओं को भी पुनः जागृत किया। जैसा कि हम प्राचीन भारतीय सामाजिक व राजनीतिक साहित्य के अध्ययन से जानते है कि हमारा समाज व संस्कृति अत्यन्त गौरवपूर्ण रही। लेकिन 19 वीं शताब्दी के आते–आते प्राचीन भारतीय गौरवमयी सांस्कृतिक परम्पराएं लुप्त होती गई तथा उसके साथ–साथ भारतीय राज्य, राजाओं व आम जनता का भी नैतिक व आध्यात्मिक पतन होने लगा था। उस समय समाज घोर अंधकार, अन्धविश्वासों व सांस्कृतिक पतन की जकड़न में आ चुका था। ऐसे पथभ्रष्ट भारतीय समाज को पुनः जागृत करने में महान समाज सुधारक स्वामी दयानन्द की अग्रणी भूमिका रही। उन्होंने ऐसे समाज का नेतृत्व किया जब सामाजिक व राजनीतिक बुराईयों को उखाड़ फेंकना टेढ़ी–खीर बन चुका था। महर्षि दयानन्द पुननिर्माण व राष्ट्रीय संगठन के उन अत्यन्त उत्साही पैगम्बरों में से एक थे जिनका उद्देश्य भारतवर्ष को अविद्या, आलस्य व अज्ञान से मुक्त कर, सत्य व पवित्रता को जागृत करना तथा वेदों के महत्त्व को भारतीय जीवन का आधार बनाकर उसे पुनः स्थापित करना था। जहां तक व्यावहारिकता का प्रश्न है तो शताब्दियों से अज्ञान व अन्धकार में जकड़े भारतीय समाज को जागृत करने तथा भारतीय राष्ट्रीय गौरव व राष्ट्रवादी भावनाओं को ऊंचा उठाने में व्यावहारिक तौर पर महर्षि दयानन्द हर कदम पर सफल रहे।

उन्होंने कर्म पर आधारित ऐसी सामाजिक रचना प्रस्तुत की जिसमें समानता, मुक्ति तथा न्याय जैसी मानवीय भावनाओं की प्रधानता थी। उन्होंने पथभ्रष्ट हिन्दू धर्म व हिन्दू समाज में वो क्रान्ति पैदा की जिसकी तुलना उस क्रान्ति से की जा सकती है जो मार्टिन लूथर ने ईसाई धर्म में की थी। उनकी यह क्रान्ति समानता, मुक्ति व न्याय की मानवीय भावनाओं पर ही आधारित थी। अपनी इस क्रान्ति में स्वामी दयानन्द भारतीय समाज को जागृत कर उसे साथ लेकर चले और जागृति का एक ऐसा विस्तृत व ठोस आधार स्थापित किया जिससे समाज में फैली बुराईयों पर बारम्बार वार होने लगे।

स्वामी दयानन्द ने ब्रिटिशकालीन भारत में सामाजिक जागृति लाने के लिये भारतीय समाज को उसके प्राचीन गौरवमय इतिहास का स्मरण कराया। इसके साथ ही उन्होंने स्वधर्म, स्वभाषा, स्वदेशी व स्वराज्य पर बल दिया और यही उनके राष्ट्रवादी विचारों का मूलमंत्र भी रहा है। उनके इन उपदेशक, राष्ट्रवादी विचारों का ही फल था कि कालान्तर में भारतवासियों ने स्वराज्य के लिये कार्य करना प्रारम्भ किया। अर्थात् यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नही होगी कि स्वामी दयानन्द ने 'स्वराज्य' रूपी गाड़ी को ऐसा साहसिक व तेज धक्का दिया कि यह गाड़ी अंत में स्वतंत्रता के लक्ष्य पर ही जाकर रूकी।

सारांश – अंत में हम कह सकते हैं कि स्वामी दयानन्द के सामाजिक राजनीतिक व राष्ट्रवादी विचारों ने तत्कालीन समाज को जागृति व मानवीय दृष्टिकोण की नवीन पटरी पर ला खड़ा किया। इसमें अहम् भूमिका निभाई उनके राष्ट्रवादी विचारों ने, क्योंकि उनके इन्हीं राष्ट्रवादी विचारों ने स्वराज्य, स्वदेशी, स्वभाषा व देश प्रेम के विचारों को प्रसारित किया जिसने भारतीय जनमानस नवचेतना, स्वाभिमान, आत्मविश्वास व आत्मगौरव की भावनायें उत्पन्न की। यहां यह कहना आवश्यक है कि वर्तमान पथभ्रष्ट भारतीय समाज में भी नवचेतना व जागृति उत्पन्न करने में ये विचार सहायक सिद्ध हो सकते है, क्योंकि जब उनके राष्ट्रवादी विचारों ने 19वीं शताब्दी के पथशष्ट समाज को जागृत कर दिया था। आज इस बात की महती आवश्यकता है कि विखण्डित भारतीय समाज को पुनः एकता के सूत्र में पिरोया जाए और जाति व धर्म के नाम पर राजनीति बंद की जाए।

सन्दर्भ सूची–

1. जायसवाल, काशी प्रसाद, **हिन्दू पोलिटी**, दि बंगलौर प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग, बंगलौर, 1943.
2. देसाई, ए.आर. **भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि**, डिपार्टमेंट ऑफ सोशिआलजी, यू. ऑफ बाबे, 1954.
3. नागपाल, ओ.पी. **भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन, संवैधानिक विकास और संविधान**, कमल प्रकाशन, दिल्ली, 1974.
4. वेदालंकार, जयदेव, **महर्षि दयानन्द की साधना और सिद्धांत**, गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, 1983.
5. उपाध्याय, उमाकान्त, **आर्य समाज कलकत्ता का इतिहास**, विधानसरणी, कलकत्ता, 1985.
6. विद्यालंकार, सत्यकेतु, **आर्य समाज का इतिहास**, आर्य स्वाध्याय केन्द्र, दिल्ली, 1986.

7. ज्योतिष्मति, उषा, **महर्षि दयानन्दः जीवनवृत व कृत्तित्व**, आर.के. स्वाध्याय संस्थान, इलाहाबाद, 1986.
8. कुमार, रविन्द्र, **आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास**, ग्रन्थ शिल्पी, नई दिल्ली, 1997,
9. आचार्य, विमला, **भारतीय पुनर्जागरण के सामाजिक प्रभाव**, पचौरी प्रकाशन, दिल्ली, 1997,
10. वर्मा दीनानाथ, **भारत में उपनिवेशवाद तथा राष्ट्रवाद**, ज्ञानंदा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000.
11. भारतीय, भवानीलाल, **स्वामी दयानन्द सरस्वतीः व्यक्तित्व, विचार व मूल्यांकन,** दयानन्द अध्ययन संस्थान, जोधपुर, 2000.
12. घासी राम, **महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन–चरित**, आर्ष साहित्य मण्डल, अजमेर, वि.स. 2015.